

मदर इण्डिया की लेखिका
मिस कैथेराइन मेयो

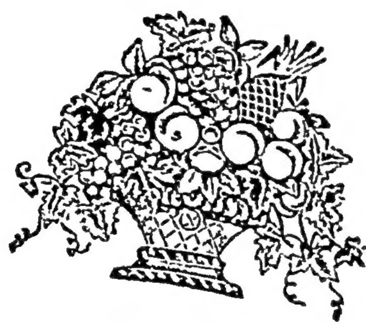
महिला पुस्तकालय का प्रथम पुष्प

पाश्चात्य संसार और भारतवर्ष

(पूर्वार्द्ध)

मूल विषय

मिस केथेराइन मेयो की 'मदर इण्डिया'



लेखक—

देवकीनन्दन 'विभव'

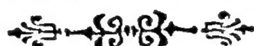
प्रकाशक—
भारतीय महिला समिति
बेलनगंज, आगरा



मुद्रक—
रविवर्मा सोलंकी,
आर्यभास्कर प्रेस, माईथान-आगरा

TO MISS CATHERINE MAYO

(BY MRS. HEMNALINI DHOLE, M. A.)



Miss Catherine Mayo,
I wish to tell you
What the Clergy now say of you all:
How short skirts get
With low-cut Jacket
The notice of men, great and small.
What says the Bible
Can you now quibble
That apple-eating crone known as Eve
Had no shame's spark
A leaf or a bark
And over her dawnfull today you grieve
What Roynalds over
Of female character
Did you ever read, O immaculate miss
Read you volume six
(They put you in a fix!)
The Volumes written by Havelock Ellis
Read you Heptemaren?
Read you Decameran?
And 'guide to widows' by Dr. Martin
With fealings sombre
Think of the number

Of the War babies since 1914!
Think, O miss, once
Of kon-kon dance
And of the cases that papers offer
Of lover's detour
By rail or motor
Of elopements daily with handsome chauffeurs
Note, dear Catherine
From Thames to the Rhine
Widows are known to all the Readers
Old Tory weller
That nice feller
Said 'Samiral! Samiral!' beware of the Vidder.
And Robert Burns
Eloquent turns
On lovers' meetings among the dye.
In one current,
Widowed and married
Of home-brewed ale and bonnie blue eye!
And in 'Juan Ton'
What says Byron?
'Woman hood certainly would have its glamour
If lasses were less bold
And misses more cold,
And widow less ardent in their Amour!'
'Patrick'

मिस मेयो और 'मदर इण्डिया'



भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के शत्रुओं द्वारा योरुप और अमरीका में भारतवासियों की अयोग्यता, धर्मान्धता और असभ्यता का ढिंढोरा पीटने का प्रयास होता रहता है। एक ओर भारतवर्ष की ईसाई संस्थाएं जो योरप और अमरीका के धनियों के दान पर निर्भर हैं, इस देश के सामाजिक और धार्मिक अधःपतन का काले से काला चित्र खींचती रहती हैं तो दूसरी ओर भारतवर्ष पर अंगरेज़ी शासन न्यायोचित प्रमाणित करनेके लिये यह समझाया जाता है कि भारतवासी अयोग्य थे,अयोग्य हैं और अभी अयोग्य रहेंगे, उनका न एक राष्ट्र है, न धर्म, न भाषा और वे स्वयं अपना शासन संभालने में सर्वथा असमर्थ हैं और अन्त में भारतवर्ष को वास्तविक स्थिति से अपरिचित लोगोंमें यह भ्रम फैलाते हुए वे कहते हैं "क्या आप चाहते हैं कि अंगरेज़ भारतवर्ष को अयोग्य भारतवासियों के हाथ में देकर लौट आवें और उसे सामाजिक और राजनीतिक कलह में नष्ट हो जाने दें?"

मिस केथोराइन मेयो नाम की एक अमरीकन महिला यात्री सन् १९२६ में इस देश में आई थीं और उन्होंने अपने चार मास के भ्रमण के परिणामस्वरूप 'मदर इण्डिया' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है। पुस्तक पर विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तक समाज-सुधार अथवा भारतवासियों के लिये नहीं लिखी गई वरन् मिस मेयो के कथनानुसार इस लिये

लिखी गई है कि उसके देशवासी अमरीकन लोग अंधकार में ही न रहें और उन को यहां की वास्तविक स्थिति का परिचय हो सके अर्थात् मिस मेयो की दृष्टि से भारतीय राष्ट्र के सम्बन्ध में विदेशियों को 'मदर-इण्डिया' के अनुसार मत स्थिर करना चाहिये।

वास्तव में पूर्व पूर्व ही है और पश्चिम पश्चिम ही, इन दोनों में इतनी विभिन्नता है कि सहज ही किसी निर्णय पर पहुंचना दुःसाहस ही है। कोई भी बनावटी और दिखाऊ पाश्चात्य वातावरण में रहा हुआ मनुष्य भारतवर्ष और भारतवासियों के आन्तरिक भावों को थोड़े से ही समय में जानने का दावा नहीं कर सकता। सन् १८९७ में लार्ड विलियम वेंटिक ने लिखा था "भारतवर्ष में रह कर मुझे जो कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है वह यह है कि हमें इस देश में भले ही वर्षों रहें किन्तु हमें भारतवासी हिन्दुओं के रहन सहन तथा आचार विचार का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। हां! इनसे सम्बन्ध रखने वाली कुछ बातें हम अवश्य जान लेते हैं पर इन्हें तो एक राह चलता भी जान सकता है। हम लोगों को जानकारी होनी चाहिये हिन्दुओं के विचार परिपाटी की, हिन्दुओंके घरेलू जीवन की और हिन्दुओं के पारिवारिक व्यवहार की और हिन्दुओं के सामाजिजक और धार्मिक उत्सवों की। जिसे किसी जाति विशेष की इन बातों की यथार्थ अभिज्ञता नहीं है उसे उस जाति विशेष का पूर्ण ज्ञान किस प्रकार हो सकता है" और यह ज्ञान भारतवर्ष जैसे लम्बे चौड़े देश में चार मास के मोटर और ट्रेन के फर्स्ट क्लास डिब्बों में बैठ कर नहीं हो सकता परन्तु मिस मेयो ने सर्वज्ञता का दावा किया है। श्रीमती एनी बिसेन्ट कहती है कि मैं सन् १८९७ में भारतवर्ष में भारतवासियों की तरह से रहती हूं पर मैंने ऐसी विकट बातें कभी नहीं देखीं।

भारतवर्ष में आकर यदि किसी यात्री को यहां व्यभिचार, धर्मान्धता, स्वार्थ, कलह के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता तो यह उसके दृष्टिकोण की ही खराबी है। श्रीमती एमिली लुतियेन्स कहती हैं "यह प्रसन्नता का विषय है कि ईश्वर उसी तरह नहीं देखता जिस तरह आदमी देखता है। एक केथेरायन मेयो को भारतवर्ष में पतन और गन्दगी के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखलाई देता......पर ईश्वर की मर्जी है कि भारतवर्ष से ही फिर एक वार उसका संवाद-वाहक संसार के हित के लिये उठ खड़ा हो। मिस मेयो ने अपनी इस पुस्तक में जो कुछ बुरा भला कहा है वह ठीक भी हो पर जो आंखें केवल बुराई ही देखती हैं वे धुंधली हैं और धुंधली आंखों से आप सत्य नहीं देख सकते। वे अभागे अंधे हैं जो गंगा यमुना में केवल गंदला पानी देखते हैं और उन्हें उनकी लहरोंकी ध्वनि में श्रीकृष्णका वंशी गान सुनाई नहीं पड़ता। जिनके हृदय वृन्दावन में गोपियों के भक्तिमय नृत्य में सम्मिलित नहीं हुए हैं वे भारतवर्ष को कैसे जान सकते हैं? जिनके भाव गंगाके उद्गम वर्फसे ढके हुए कैलाश पर्वत पर शिव के चरणों तक नहीं पहुंचे हैं उन्होंने भारतीय हृदयको नहींसमझा है। जिन्होंने वर्ण "वस्त्रधारी वुद्धके चरणों से पवित्र हुई धूल पर नहीं चला है वे किस तरह वात करेंगे?" आगे वे कहती हैं "मैंने पूर्व और पश्चिम का भेद पहलीवार जव देखा जव मैं अपनी कलकत्ता यात्रामें एक लड़ाईके जहाज पर गईथी। यह युद्ध-पोत पाश्चात्य सभ्यता की व्यवस्था, सफाई, नियम, संगठन, दौड़-धूप, मद्य और मांस और पाशविक वल को वतला रहा था। इस की दूसरी ओर हुगली के गदले जल में मैंने भारतीय दृश्य देखा जहां कि घाट की सीढ़ियों पर सहस्रों यात्री स्नान, आचमन, मन्त्र, प्रार्थना कर रहे थे। चमकीले रंगे वस्त्र और पीतल और कांसे के वर्तन और फूल मालाएं जो नदी में चढ़ाई जा रही थीं इस दृश्य

की सुन्दरता को बढ़ा रहे थे।"......"क्या प्रकृति' का पवित्र सन्देश तोपों के सन्देश से सत्य के अधिक समीप है? क्या सफाई और व्यवस्था का भाव गन्दगी और मलीनता से ईश्वरत्व के अधिक समीप है। दोनों ही सभ्यताएं संसार के लिये आवश्यक हैं। पूर्व पश्चिम के बगैर और पश्चिम पूर्व के बगैर अधूरा है" पर मिस मेयो इसे स्वीकार नहीं करतीं, उनके लिये इंगलैन्ड और अमरीका जो कुछ है वह सब अच्छा है और भारतवर्ष जो कुछ है वह सब बुरा है।

भारतवासियों के विषय में आपने जो मुख्य अभियोग लगाये हैं वे यह हैं—

प्रथम अभियोग—आचरण हीनता और इन्द्रिय सम्बन्धी अतिशयता

(क) प्रचलित हिन्दू-धर्म किसी भी विषय में आत्म-संयम करना नहीं सिखलाता और पति-पत्नी सम्बन्धी व्यवहार में तो तनिक भी नहीं।

(ख) पिता अपने गृहमें लड़की को रखने का साहस इसलिये नहीं करता क्योंकि उसे भय है कि वह भ्रष्ट न करदी जाय और विशेष कर उस गृह में जहां कि कितने ही मनुष्य चाचा, भाई, भतीजे सब सम्मिलित रहते हैं।

(ग) किसान की स्त्री अपने गृह पर अपनी लड़की को अपनी आंख से एक घंटे भी दूर छोड़ना नहीं चाहती क्योंकि उसे निश्चय है कि यदि वह ऐसा करेगी तो लड़की भ्रष्ट करदी जायगी।

(घ) उस दशा में जब कि स्त्री लगातार सन्तान पैदा करने में असमर्थ हो तो पति के लिये अन्तिम शस्त्र यही रह जाता है कि वह उसे भेंट सामग्री लेकर यात्रा के लिये भेज दे और कुछ लोग समय बचाने के लिये विवाह के दूसरे ही दिन भेज देते हैं।

(ङ) मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये इस विभाग के पुजारी नवयुवकों में से ही सावधानी से छांटे जाते हैं।

(च) प्रायः सब युवक नपुंसक हैं और वीर्य सम्बन्धी रोगों से पीड़ित हैं। इस प्रकार के रोगों से घृणा नहीं की जाती और न सार्वजनिक मत इसके विरुद्ध कार्य करता है।

(छ) सन्तानोत्पत्ति योग्य भारतीय स्त्रियां विना विशेष रक्षा के भारतीय पुरुषों में जाने का साहस नहीं कर सकतीं।

(ज) 'भारतवर्ष के अनेक भागों में–उत्तर और दक्षिण–अनाचार के वातावरण में पले हुए बालक को यदि उसकी शारीरिक स्थिति आकर्षक होतो उसे वय प्राप्त आदमियों की तृप्ति के लिये काम में लाया जाता है अथवा एक मन्दिर में उसे व्यभिचार के लिये नियत कर दिया जाता है। पिता इसमें कोई हानि नहीं देखते वरन् उन्हें प्रसन्नता होती है कि उनका पुत्र दूसरों को प्रसन्न करने योग्य है।

द्वितीय अभियोग––पति और पिता माताओं का पत्नी और पुत्रियों के साथ अमानुषिक व्यवहारः––

(क) स्त्रियों को पर्दे में बन्द रखा जाता है और उन्हें मरने से पहले बाहर निकलने नहीं दिया जाता।

(ख) लड़कियों को या तो सोवड़ में ही मार डाला जाता है और यदि बच भी रहती हैं तो उनके साथ बड़ा निर्दयता का व्यवहार किया जाता है।

(ग) पत्नी को सम्मिलित कुटुम्ब में रहना पड़ता है और सास, श्वसुर और नंद की झिड़कियां सहनी पड़ती हैं।

(घ) यदि लड़की के सन्तान न हो तो उसका जीवन असह्य कर दिया जाता है। हिन्दू-समाज में स्त्री का जीवन ही इसलिये है कि वह अपने पति के लिये एक पुत्र उत्पन्न कर दे।

(ङ) स्त्री पति के मरने पर आत्म-हत्या कर के सती इस लिये हो जाती हैं ताकि उन्हें अपना सारा जीवन कष्ट और अपमान में न बिताना पड़े।

तृतीय अभियोग--धार्मिक अयोग्यता--

(क) एक भारतवासी के लिये झूठ में पकड़ा जाना कोई शर्म की बात नहीं है, लौकिक प्रथा इसके विरुद्ध कार्य नहीं करती।

(ख) भारतवासी बड़े गन्दे हैं-गोबर खाने, गौ-मूत्र पीने, देवी देवताओं के सामने हत्या करने, नालियों में आये हुए गन्दे गंगा के पानी का आचमन करने मे ही धर्म समझते हैं।

(ग) उनका धर्म आत्म संयम की शिक्षा नहीं देता वे शिव के लिङ्ग की पूजा करते हैं और दक्षिण के वैष्णव लोग माथे पर जननेन्द्रियों के चिन्ह बनाये रहते हैं, यह सब काम-प्रवृत्ति के बढ़ाने के लिये ही होता है।

(घ) वे गौ--रक्षा को धर्म तो समझते हैं पर किसी भी हिन्दू की आत्मा को उसे कसाई के हाथ में बेचने में दुःख नहीं होता।

चतुर्थ अभियोग--राजनीतिक अयोग्यता--

(क) जब तक अंगरेज ही बड़े पदों पर होते थे तब तक भारतवर्ष में पूर्ण शान्ति और न्याय था परन्तु भारतवासियों को शासन सुधार देकर ज्यों २ अधिकार दिये गये हैं त्यों २ सारा कार गुड़गोबर होता जाता है। हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े खड़े होगये हैं और जिन २ विभागों को भारतीय मंत्रियों को देदिया गया है, वे सब नष्ट हो रहे हैं।

(ख) भारतीय न्यायाधीश और अन्य कर्मचारी घूंसखोर होते हैं। वादी और प्रतिवादी दोनों से रुपया ले लेते हैं और जो पक्ष हारता है उसका रुपया लौटा देते हैं। हरएक झगड़े के फैसले में और किसी जगह की नियुक्ति में हिन्दू जज हिन्दू का और मुसलमान मुसलमान का पक्ष करता है।

(ग) भारतीय स्वतन्त्रता के लिये लड़ने वाले सब भारतीय नेता मक्कार हैं, उनके दिल में कुछ और है, कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। यदि उनके हाथ में भारत के शासन

की डोर देदी जाय तो भारतवासी गृह-कलह में नष्ट हो जांयगे और अफ़गान या रूस उनको गुलाम बना डालेंगे।

मिस मेयो ने कुछ व्यक्तिगत उदाहरण लेकर यह साबित करने की चेष्टा की है कि समस्त भारतवर्ष की यही दशा है। सन् १८९१ में व्यवस्थापक सभा में जब स्वीकृति बिल पेश हो रहा था उस समय भारतीय स्त्रियों की तरफ से एक मेमोरियल पेश किया गया था, मिस मेयो ने उसके उद्धरण दिये हैं कि नौसे दस वर्ष की बाल पत्नी उनके पतियों की काम पिपासा मे किस तरह पीड़ित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त अस्पताल के मरीजों का उद्धरण देकर वे संसार की दृष्टि मेंयह बतलाती हैं कि हिन्दुओं के जीवन की यह प्रतिदिन की बातें हैं। यद्यपि भारतवर्ष में उचित से कम अवस्था में ही विवाह हो जाते हैं पर यह कहना कितना भ्रम-जनक और मिथ्या है कि सर्वसाधारण में ऋतुदर्शन से पहले ही पति पत्नी का समागम प्रारम्भ हो जाता है। जनगणना की रिपोर्ट से मालूम होता है कि लड़कियों के विवाह की औसतन आयु साढ़े बारह वर्ष है और १००० लड़कियों में से केवल ३८३ लड़कियों का विवाह १० से १५ वर्ष की आयु में होता है। इसके अतिरिक्त हिन्दू-समाज में विवाह होते ही पति पत्नियों का सम्बन्ध नहीं हो जाता प्रायः एक, तीन, पांच या सात वर्ष बाद गौना होता है जिसके बाद ही वास्तविक क्रमसे पति पत्नीका सम्बन्ध प्रारम्भ होता है। श्रीमती बिसेन्ट कहती हैं कि मुझे बतलाया गया है कि बालविवाह जैसी दूषित प्रथा भी केवल भारतवासियों में ही नहीं है जैसा कि इस पुस्तक में बतलाने की चेष्टा की गई है और इङ्गलैण्ड में कानून से विवाह वय लड़कियों के लिये बारह साल और लड़कों के लिये चौदह साल है। पूर्वीय लन्दन में ऐसे अनेक विवाह होते हैं।

मिस मेयो की पुस्तक पढ़ने के बाद ऐसा विदित होता है कि मानो भारतवर्ष में ऐसा आदमी कठिनाई से ही मिलेगा जो

वीर्य-रोग से पीड़ित न हो। सर जान मेनार्ड लिखते हैं कि इस विचार का कोई भी डाक्टर जो भारतवर्ष में चिकित्सा कर चुका है वह खण्डन करेगा। मिस्टर ग्रहम पोल लिखते हैं कि मेरे विचारसे यह बात बिलकुल मिथ्या और बिना आधार के है कि नवयुवती भारतीय महिलाये बिना किसी रक्षा के खास प्रवन्ध के पुरुषों में आ जा नहीं सकतीं।

यद्यपि भारतवर्ष के थोड़े से प्रान्तों--बंगाल, पंजाब, युक्तप्रांत में पर्दे की दुष्ट रिवाज प्रचलित है पर देश के अधिकांश भाग में पर्दे की प्रथा बिलकुल नहीं है और यदि है भी तो बहुत कम। मिस मेयो की संख्या कि प्रायः डेढ़ करोड़ से दो करोड़ महिलाओं को विवाह के बाद जनानखाने में से निकलने का मरने तक अवसर नहीं दिया जाता बिलकुल ग़लत है। वास्तव में युक्तप्रांत, पंजाब और बंगाल के नगरों में कुछ ऊंची जातियों में छोड़ कर कहीं पर्दा है ही नहीं। मिस मेओ पर्दे का जो तात्पर्य निकालती हैं ऐसे पर्दे का रिवाज कम से कम हिन्दुओं में तो बिलकुल ही नहीं है। भारतवर्ष की कुल आबादी की अधिक से अधिक ५ प्रति शत स्त्रियां ऐसी हैं जो पर्दा करती हैं।

पुस्तक भर में सब से अधिक क्रोध उन राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के प्रति दिखलाया गया है जो अंगरेज़ सरकार के स्वर्गीय और दैवप्रदत्त छत्रछायासे देशको निकाल कर स्वतन्त्र करना चाहते हैं। ठाकुर रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी जैसे संसारमान्य महापुरुषों को भी नहीं छोड़ा गया। महाकवि रवीन्द्रनाथ टेगोर को बालविवाह का पक्षपाती बतलाते हुए कहा गया है कि विदेशियों को भारतवासियों के सुन्दर वाग्जाल में नहीं आजाना चाहिये। महामान्य टेगोर इस विषय में कहते हैं—"हम दुख सहित पाश्चात्य देशोंके उस प्रचार कार्यसे परिचित हैं जो एक देश अपने शत्रु-देश के लिये करता रहता है पर व्यक्तियों के विरुद्ध, राजनी-

तिक आकांक्षाओं से क्रुद्ध हुई लेखिका के इस प्रचार से मुझे आश्चर्य हुआ। संयुक्तराज्य अमरीका के लोग यदि कभी इंगलैंड के राजनीतिक विरोधी हुए हैं तो इस प्रकार का अंगरेज़ लेखक अमरीका के समाचार पत्रों से समाचार छांट कर उनकी अपराध करने की प्रकृति और उनको सिनेमाओं के द्वारा घृणित व्यभिचारका चित्र खींचनेमें कैसा प्रसन्न होता पर क्या यह सम्भव था कि अधिक से अधिक क्रोध में भी प्रेसीडैंट विल्सन पर कभी यह मत प्रगट करने के लिये अभियोग लगाता कि ईसाई संस्कृति के प्रचार के लिये नीग्रो लोगों का प्रपीड़न करना एक साधारण आवश्यकता है।" आगे वे कहते हैं—"आचरण हीनता के दृष्टान्त जब हम अन्य देशों के वातावरण में देखते हैं तब वे हमें स्वभाविक हा। बड़े दिखलाई पड़ते हैं क्योंकि सफाई की शक्ति जो कि अन्दर से काम करती है और उससे उलटी शक्तियां जो सामाजिक पलड़ों को एक समान बनाये रखती हैं वह एक अजनबी को दृष्टिगोचर नहीं होती और विशेषकर उसे जो कि आचरण हीनता ही देखना चाहता है। पूर्व में जब ऐसा समालोचक आता है और जब वह लाल पैन्सिल से बढ़ा चढ़ा कर दोषों के दिखाने में मग्न होता है तब यह हमारे समालोचकों को भी इस पर मजबूर करता है कि वह भी उनको गन्दी आदतें और आचरण हीनता जिनमें से कुछ पर एक बड़ा सभ्य खोल चढ़ा हुआ है केआधार पर पाश्चात्य समाज का बुरा चित्रण करें।'

इन में भी स्वराजी नेता अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण मिस मेयोके सबसे अधिक कोप भाजन हुए हैं। जहां श्रीयुत पटेल जैसे योग्य सज्जन सभापति हों जिनकी व्यवस्था सम्बन्धी प्रशंसा स्वयं वायसराय और बड़े अंग्रेज़ों ने की है वह व्यवस्थापक सभाएं मिस मेयो को ऐसी ही मालूम पड़ती हैं जैसे कमरे में कुछ शरारती लड़के इकट्ठे हो गये हों और एक घड़ी मिलने पर उसमें

उँगली खींचने और पुर्जे तोड़ कर ले जाने के उत्सुक हों। श्रीयुत महम पोल इस सम्बन्ध में कहते हैं कि यदि मिस मेयो इङ्गलेण्ड में आकर पार्लियामेण्ट को देखें तो शायद उनको उसका दृश्य इससे भी बुरा मालूम हो। वास्तव में जिस व्यवस्थापक सभा में श्री वी० जे० पटेल, महामना पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीयुत श्रीनिवास अयंगर, पं० मोतीलाल नेहरू, श्रीयुत जिन्ना जैसे योग्य मनुष्य हों जो किसी भी देश की बड़ी से बड़ी पार्लियामेण्ट का सञ्चालन कर सकते हैं उसके लिये यह कहना कि इन्होंने उसे केवल एक लड़कों का खिलवाड़ मात्र बना रक्खा है, कितनी बड़ी मक्कारी है।

क्या अधिकांश भारतीय जज घूंसखोर हैं? क्या उनका फैसला धर्मगत या जातिगत पक्षपात लिये हुए होता है? क्या स्थानान्तरित विषयों में भारतीय मंत्री अंग्रेज़ों से कम योग्य साबित हुए हैं? मिस मेयो को इन्हें प्रमाण और संख्याओं से साबित करना चाहिये। व्यवस्थापक सभाओं के इधर उधर के विवरण तोड़ मरोड़ कर मिस मेयो ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि स्वयं भारतवासी ही सब प्रकार की अपनी उन्नति के विरोधी हैं। स्वीकृति-बिलके विषयमें कुछ व्यक्तियोंके उद्धरण देकर उन्हें ख्वा-मोखा समझाकर उन्होंने यह चेष्टाकी है कि भारतीय मत बालपत्निय के लिये कोई भी रक्षाका कार्य करनेके विरुद्ध है और इसका केवल भारतीय सदस्योंकी ओरसे विरोध किया गया पर जो वहां के कार्य-विवरण को देखेंगे उन्हें पता लगेगा कि वास्तव में प्रायः थोड़े लोगों को छोड़कर सब ही हिंदू सदस्य आयु बढ़ा देने के पक्ष में थे पर सरकारी सदस्योंकी रायसे ही यह प्रस्ताव गिरगया। मि० टोनकि-नसनने इस सम्बन्धमें सरकारी नीतिको बतलाते हुए कहाकि हम चौदह साल से अधिक आयु बढ़ाने के बिलकुल विरुद्ध हैं। अभी हाल में जज श्री हरबिलास शारदा ने अपना बाल विवाह सम्बन्धी

प्रस्ताव पेश किया तो सरकारी बेंचों से ही अधिकतर उसका विरोध किया गया।

मिस मेयो ने मदरास के वाटर वर्कस का उल्लेख किया है पर उन्हें यह विदित नहीं है कि किसी विशेष कारण से बिना छना और स्वच्छ पानी का मिश्रण एक अंग्रेज़ द्वारा ही हुआ था, जब वह कारपोरेशन का सभापति था। उसके बाद अब भारतीय सदस्य इसमें परिवर्तन करने की पूर्ण चेष्टा कर रहे हैं।

मिस मेयो ने अपनी निस्वार्थता और निष्पक्ष होने का बार बार ढिंढोरा पीटा है पर उन्होंने अब तक यह बतलाने की चेष्टा नहीं की है कि वे यहां आने से पहले उन्हें बार २ इण्डिया आफिस में क्यों जाना पड़ा, यहां अमरीका से अन्य जो मनुष्य भ्रमणार्थ लोग आते हैं उन्हें तो प्रायः कभी वहां जाते नहीं देखा गया। यदि मिस मेयो ने यह पुस्तक केवल अपने देशवासी अमरीकनों के लिये ही लिखी थी तो यह एक दूसरी उलझन है कि उन्होंने उसका इंगलैंड में एक नया संस्करण और क्यों निकाला और पार्लियामेण्ट के सदस्यों में पुस्तकें मुफ्त क्यों बांटी गई। इसके अतिरिक्त मिस मियो अपने देश को इन सुन्दर ग्रीष्म के दिनों में छोड़ कर इंगलैंड में जाने क्यों पड़ी हुई थीं?

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मिस मेयो के इस कार्य में कुछ गूढ़ रहस्य है। अमृतसर में सरदार शार्दूल-सिंह जी से एक सी० आई० डी० के अफसर ने पूंछा "आप से मिस मेयो मिलना चाहती है क्या आप कोई समय नियत करेंगे?" सरदार साहब के पूंछने पर कि आपका मिस मेयो से क्या सम्बन्ध है उस कर्मचारी को यह स्वीकार करना पड़ा था कि वह मिस साहबा को सहायता करने के लिये सरकार की ओर से नियत किया गया है। एक बात ओर है कि इस पुस्तक

के भूमिका लेखक वही श्रीयुत लायोनल कार्टिस हैं जिन्होंने सन् १९१८ में शासन सुधार सम्बन्धी जांच कमीशन के आने से पहले सरकार के प्रोत्साहन से भारतवासियों के विरुद्ध एक पुस्तक लिखी थी और जिसका भण्डा फोड़ अकस्मात गांधी जी की एक पुस्तक में जो उन्होंने सरकारी प्रेस से मंगाई थी एक गुप्त पत्र आ जाने के कारण हो गया था।

पुस्तक यदि केवल समाज सुधार की दृष्टि से ही उपयोग में लाई जाय तो बुराई में से भी भलाई निकल सकती है और महात्मा गान्धी जी के आदेशानुसार हम यह चाहते हैं कि भारतवासी इसे पढ़कर आंखें खोल कर उठ खड़े हों और सामाजिक कुरीतियों को जिसके कारण विदेशियों को हमारे ऊपर ऐसे बुरे लांछन लगाने का अवसर मिलता है, उखाड़ कर फेंक दें। आगे इसी विचार से इन कुछ पृष्ठों में हम 'मदर इण्डिया' के भाव पाठकों के सामने रख रहे हैं। दूसरे भाग में पाश्चात्य देशों की राजनीति और समाज का चित्रण किया गया है ताकि भारत वासी पूर्व और पश्चिम दोनों की बुराई समझलें और अपनी उन्नति के लिये एक आदर्श मार्ग बना लें।

आगरा ता० २ अक्तूबर १९२७ देवकीनन्दन 'विभव'

पाश्चात्य संसार और भारतवर्ष



प्रथम भाग

मंडाले को मोटर में

कलकत्ता ब्रिटिश साम्राज्य में द्वितीय नगर है, जहां पाश्चातीय वर्त्तमान ढंग की अट्टालिकायें, स्मारक, पार्क, बाग, अस्पताल, दुकानें सब कुछ हैं जो एक अच्छे अमरीका के नगर में हो सकती हैं। इसके साथ ही भारतीय नगरो की भांति वहां मसजिद और मन्दिर और टेढ़े मेढ़े बाजार भी हैं। बाजारो और गलियों में तंग छाती, निर्बल दृष्टि वाले, रक्त विहीन विद्यार्थी देशी भेष में छोटे पुस्तक विक्रेताओं की दुकानो पर कम्यूनिष्ट साहित्य के पन्ने पलटते हुए दिखाई देते हैं ।

'काली घाट' (काली का स्थान) कलकत्ता नगर के नाम का मूल-शब्द है। महान शिव की पत्नी काली एक हिन्दू देवी हैं जिनका कर्म सृष्टि का नाश है और जिनकी तृष्णा है रक्त और बलि । उनकी संसार पर आध्यात्मिक प्रधानता प्रायः पाँच हज़ार वर्ष हुए प्रारम्भ हुई थी और चार लाख बत्तीस हजार वर्ष तक भविष्य मे रहेगी । भारतवर्ष मे बड़े और छोटे सहस्रों काली के

मन्दिर हैं । कलकत्ते नगर का मन्दिर ब्राह्मणों के एक कुटुम्ब की निजी सम्पत्ति है जिस पर उनका आधिपत्य तीन शताब्दियों से चला आता है । इनमें से मुझे एक ब्राह्मण मित्र अपने साथ बड़ी कृपापूर्वक मन्दिर के भीतर ले गये । इनका नाम मि० हल्दर था । यदि वे सफेद घांघरे नुमा घुटन्ने और सफेद चोगा (आपका तात्पर्य उनकी धोती और दुशाले से है) जोकि बंगाली प्रायः पहिनते हैं न पहने होते तो मि० हल्दर ऐसे ही प्रतीत होते जैसे एक उत्तरीय इटेलियन सभ्य पुरुष । उनकी भाषा मंजी हुई थी और उनका शिष्टाचार सुहावना था ।

मन्दिर की सम्पति है पांच सो नब्बे एकड़ भूमि जिस पर राज कर माफ़ है । दूर २ से आये हुऐ यात्रियो से मन्दिर भरा रहता है जोकि भेटस्वरूप रुपया पैसा चढ़ाते हैं । वहां महन्त की दक्षिणा भी इकट्ठी की जाती है । इसके अतिरिक्त द्वारों पर अनेक छप्परों की दूकानें हैं जिनमें मिठाइयां, पवित्र मूर्त्तियां गेंदे के फूल, तावीज और मन्नत की वस्तुएं बिकती हैं, इनसे भी एक खासी आमदनी होती है ।

जल्दी २ भीड़ को चीरते हुए मि० हल्दर हमें मन्दिर के मूर्त्ति स्थान में ले गये । एक ऊंचे मञ्च को जाने के लिये तीन ओर से पूरी लम्बी चौड़ाई की सीढ़ियों की पंक्तियां थीं । एक सिरे पर एक अर्ध-आच्छादित गहर मन्दिर-गृह में धुंधले प्रकाश में देवी की मूर्त्ति दीख पड़ती है । काला मुख, भयानक लटकती हुई जीभ, जिससे रक्त टपक रहा है उसके चार हाथों में से एक में मनुष्य का रक्त-प्लावित मस्तिष्क है, एक में कृपाण, एक

हाथ से रक्त उछाल रही हैं और चौथा जो भयातुर करने के लिये उठा हुआ है, खाली है। उनके चरणों के समीप पुजारियों का मन्त्रि-मण्डल खड़ा है।

इस बड़े मञ्च पर देवी के सन्मुख स्त्री और पुरुष जमीन पर लेट कर दण्डवत करते है। इनके बीच मे हँसते हुए लड़के लकड़ियो के सिरो पर पटाखा लगाये हुए चक्कर काटते फिरते है। इसके अतिरिक्त एक सफेद बछड़ा भी घूमता फिरता है और सबके मध्य मे एक सफेद डाढ़ी वाला मनुष्य एक बड़ी पुस्तक के सामने जमीन पर आल्थी पाल्थी मारे भिनभिना रहा है। 'यह हिन्दू पौराणिक पुस्तक मे से काली जी की कथा भक्तो को सुना रहा है' मि० हल्दर ने कहा।

यकायक 'मे मे' की एक हृदय-विदारक चीत्कार सुनाई दी। हम खुले बरामदे मे पहुँचे। यहां पर दो पुजारी खड़े थे, एक के हाथ मे छुरी थी और दूसरा एक छोटे बकरे को पकड़े हुए था। बकरा मिमिया रहा है क्योंकि इस वायुमण्डल में वह गन्ध है जो सभी पशुओं को भयभीत बना देती है। देवी के सन्मुख ढोलक तड़ातड़ बजने लगी। पुजारी बकरे को पकड़ता है और उसे ऊपर उछाल देता है और बकरा पैर फैलाए हुए नीचे गिर पड़ता है, उसकी मिमियाती हुई खोपड़ी एक छेददार लट्ठे मे मज़बूती से पकड़ी हुई होती है। दूसरा पुजारी छुरी के एक ही वार में इस छोटे पशु की गरदन अलग कर देता है। रक्त तेजी से फर्श पर बह निकलता है; ढोल, घड़ियाल उग्रता से बजने लगते है। समस्त पुजारी और भक्त लोग चिल्ला उठते हैं 'काली ! काली ! काली !'

इस बीच मे एक स्त्री पुजारियो के पीछे से निकल कर यकायक आगे बढ़ती है और चित्त लेट कर अपनी जीभ से वह रक्त 'बच्चा पैदा होने की आशा' मे चाटती है। एक दूसरी स्त्री झुक कर कपड़े को रक्त में भिगोती है और अपनी आंगी में छिपा लेती है। प्रायः आधे दर्जन बीमार और फोड़ो से पीड़ित कुत्ते जिनकी शक्ल अनेक रोगो के कारण भयानक हो गई है, अपने क्षुधापीड़ित थूथनों को गाढ़े रक्त में अड़ा देते हैं।

'इस प्रकार हम डेढ़ सौ से लगा कर दो सौ बकरे तक रोज बलिदान करते हैं' मि० हल्दर ने कुछ अभिमान के साथ कहा 'यह बकरे भक्तों द्वारा प्रदान किये जाते हैं'।

इसके पश्चात् वह हमे छोटे देवी देवताओ के गृह पर ले जाते हैं, इनमे से एक सीतला की देवी है, जिनके पास छोटी चेचक की देवी है, उसके बाद पांच मुख वाला काला सर्प है, जिसके ठोड़ी के नीचे पुजारी की एक छोटी मूर्त्ति लटकी हुई है, इन्हे वे भेंट चढ़ाते हैं जो सर्प के काटने से बचना चाहते हैं। वह लाल मूर्त्ति हनुमान की है जिसकी पूजा अर्चना पहलवान कुश्ती लड़ने से पहले और धनवान और विश्वविद्यालय के विद्यार्थी नये व्यवसाय और परीक्षा से पहले करते हैं। इसके पश्चात् काली के पति पौराणिक शिव की मूर्त्ति है। सब देवताओं के सन्मुख गेंदे के फूल और मन्दिर में निवास करने वाले बैलों के गोबर से बने हुए पवित्र उपले, जोकि मन्दिर की दूकानों पर मोल मिल जाता है, चढ़ाये जाते हैं।

मि० हल्दर हमे फिर एक गली में होकर वहां ले जाते हैं जहां तरतीव से एक लाइन में अर्ध नंगे महात्मा और भिक्षुक बैठे भिक्षा मांग रहे हैं जिनमें से अधिकतर तगड़े हैं और जटा बढ़ाये और धूल रमाये हुए हैं, सब फोटो लिये जाने के लिये इच्छुक हैं। एक पागल मनुष्य जोकि एक लड़की को उसकी कलाई को एक कपड़े के दोनों सिरों से बांधे हुए खींचता था सामने आया। 'पति और नवीन पत्नी' मि० हल्दर कहते हैं 'वे एक पुत्र की याचना के अभिप्राय से इस मन्दिर में आये हैं।'

इसके पश्चात् वे हमें मन्दिर के नीचे जहां एक गंदली नदी जो उथली और स्नान करने वालों से भरी हुई थी ले गये। 'यह गंगाजी की सब से प्राचीन शाखा है इसलिये इसकी महत्ता बहुत बड़ी है।' लाखों रोगी प्रति वर्ष स्नान करने के लिये यहां आते हैं और रोग विमुक्त होते हैं जैसा कि आप उन्हें सामने देख रही हैं। दूसरी अभिलाषाओं से भी जो देवी की अर्चना करने आते हैं, उन्हें भी पहले अपने पाप धोने के लिये यहां स्नान करना उचित है। स्नान करने के पश्चात् वे उस जल का आचमन करते हैं जो उनके पैरों पर टकराता है।

बीच २ में पुजारियों का तट पर नीचे ऊपर आना जाना लगा हुआ था। उनमें से हर एक तीन चार बकरों को खींच कर लाता था और स्नान करने वालों के बीच में उन्हें डुबकी लगाकर मन्दिर के दालान की तरफ घसीट कर ले जाता था। स्त्री और पुरुष घड़ा लिये हुए उतरते थे और चढ़ते थे और नदी मे अपने घड़े भर कर उसी मार्ग से चले जाते थे।

'प्रत्येक वकरे के वच्चे को' मि० हल्दर ने कहा वलि करने के पहले उसे पवित्र नदी में शुद्ध कर लेना चाहिये। यह पानी, जो ले जा रहे हैं काली और सन्मुख खड़े हुए पुजारियों के पैरो पर चढ़ाया जायगा" जैसे ही कि मि० हल्दर जाने लगे मैंने वाहर की दीवार के पीछे एक आदमी के हाथ के जाने लायक चौड़ी नाली देखी जो कि फर्स के पास खुली हुई थी। इस छेद के पास एक छोटे पत्थर पर कुछ गेंदे के फूल, कुछ गुलाव की पंखडियां और कुछ पैसे पड़े थे। जैसे ही मैं देख रही थी अकस्मात् छेद मे से कुछ गंदा पानी वह निकला और एक स्त्री ने भाग कर एक प्याला भरा और पी गई।

"यह हमारी पवित्र गंगा का जल है जो कि काली और पुजारियों के चरणो में वहकर और भी अधिक पवित्र हो गया है। फिर यह जल मन्दिर के फर्स से इस प्राचीन नाली द्वारा यहां आता है। यह पेचिस और उदर-जनित वुखारों के लिये वड़ा लाभप्रद है। वीमार जिनमे कि जरा भी चलने की शक्ति है गंगा में स्नान करने के वाद आकर यह पीते हैं, जो कि वहुत ज्यादा वीमार हैं उनके मित्र उनके लिये वहाँ ले जा सक्ते हैं"

प्रथम प्रकरण

तर्कवाद।

अधिकांश अमरीका निवासी भारतवर्ष के विषय में बहुत ही कम जानते हैं। उनका ज्ञान यहीं तक परिमित है कि भारतवर्ष मे महात्मा गान्धी रहते हैं और चीते, वगैरें हिंसक पशु। जिनको कुछ और ज्ञान है उन्हे भी एक या दूसरे पक्ष के वेतन प्राप्त प्रचारक, पादरियों, किस्से कहानियों और ऐसे ही साधनों से प्राप्त हुआ है। मैं भारतवर्ष में इसलिये गई थी कि निष्पक्ष, निर्लोभ और स्वेच्छा से यहां की स्थिति को देखूं और अपने देश वासियों के सामने रखने के लिये सामग्री इकट्ठी करूं। मैं इसी हेतु से अंग्रेज और भारतीय हेल्थ-अफसरो से मिली और उनके साथ ग्रामों और नगरो में जाकर उनके कार्यक्षेत्र को देखा। मैं अस्पतालो में गई और वहां मैंने डाक्टरो से बातचीत की और रोगियों का अध्ययन किया। मैंने सीमा प्रान्त से लेकर मंदरास तक भ्रमण किया, कभी जिला कमिश्नर के साथ, कभी किसानों की चोपालों पर, चुंगी की मीटिंगो में, कचहरियो में गई। मैंने जेल, बच्चों और बीमारो की परिवरिश, खाद्य पदार्थों की रक्षा और सफाई को देखा। मैंने भिन्न २ जातियों और श्रेणियो के मनुष्यों की भ्रमण में और घरेलू आदतो की जांच की। मैंने कृषि-फार्मों और मवेशीखानों मे कृषि और मवेशियों को देखा और कृषि और जानवरो के प्रबन्ध को समझा। मैं स्कूलों मे गई और अध्यापको और विद्यार्थियों से वार्तालाप किया। मैं व्यवस्थापक सभाओं में गई और मैंने प्रसिद्ध भारतीय राजाओ,

राजनीतिज्ञों, शासकों, धार्मिक नेताओं से वार्तालाप किया। मैंने इस भारी परिश्रम से यह सब कुछ एकत्रित किया है।

सर चिम्मनलाल सीतलवाद खेदपूर्वक कहते हैं 'यह देश उत्साह (Initiatire) की कमी, उद्योग की कमी और सहायता प्राप्त कार्यों की कमी के कारण ही पीड़ित हो रहा है' मि० गांधी कहते हैं 'हम अपनी असहाय अवस्था, उत्साह और मौलिकता की कमी का उत्तरदायित्व अंगरेज़ी शासकों पर उचित ही रखते हैं। दूसरे सार्वजनिक कार्यकर्ता दावा करते हैं "हमारा उत्साह इतना ढीला क्यो है? हमारी पारस्परिक प्रतिज्ञाएें, भ्रातृत्व के लिये आत्म-समर्पण और स्वतन्त्रता के भाव इतनी शीघ्र क्यो समाप्त होकर लोप हो जाते हैं? हमारा स्वयं पुरुषत्व इतना कम क्यों है? हम इतनी जल्दी थक क्यो जाते है और हमारी अकाल मृत्यु क्यों हो जाती है? साथ २ इसका जवाब वे स्वयं ही यह देते हैं कि "हमारा आध्यात्मिक अङ्ग जख्मी होगयाहै और उससे रक्त वह रहा है। हमारी स्वयं आत्मा आततायी विदेशियो की छाया से विपाक्त हो चुकी है। अब कुछ नहीं किया जा सकता, कुछ भी नहीं, सिवाय इसके कि राजनीतिक मञ्च पर चढ़ कर विश्वास पूर्वक आततायी की निन्दा की जाय जब तक वह कि भाग न जाय। ब्रिटेन जिस समय देश खाली करके चला जायगा, तब और तब ही स्वतन्त्र मनुष्य होकर, स्वतन्त्र वायु मे हम भारत माता की अन्य अन्य छोटी २ आवश्यकताओं पर ध्यान दे सकते हैं। इसी विषय पर और पीड़ित भारतवासियों के प्रति सहानुभूति से प्रेरित होकर मैं इस विषय मे प्रवेश करने का साहस करती हूं। वह यह है:—

अंगरेजी शासन का, चाहे वह अच्छा, बुरा, उदासीन कुछ भी हो उपरोक्त स्थिति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । आलस्य, असहाय अवस्था, मौलिकता और साहस हीनता, स्थिरता और दृढ़ता की कमी, उत्साह का ढीलापन, जीवन-शक्ति की कमजोरी, यह सब न केवल वर्तमान भारतवासियों वरन् बहुत वर्षों के इतिहास के उनके लक्षण हैं । उसकी इन कमजोरियों का जितना ही अधिक वर्णन किया जायगा उतना ही वे इन्हें अनुभव करेंगे और दोनों हाथों से पकड़ कर खोद ढालने की चेष्टा करेंगे । उसकी आत्मा और शरीर वास्तव में दासता की बेड़ी में जकड़े हुए हैं पर वह स्वयं ही उसको लपेटे और छाती से लगाये हुए जोरों से उसकी रक्षा करता है । स्वयं उसके हृदय के ही नवीन भावों के अतिरिक्त अन्य कोई भी साधन उसे स्वतन्त्र नहीं कर सकता । भूत, वर्तमान अथवा भविष्य के बाहरी कारणों को दोष देने से वह अपने मस्तिष्क को ही धोखा दे सकता है और अपने छुटकारे के दिवस को हटाता है ।

एक बारह वर्ष की कन्या को ही लीजिये—उसकी दयाजनक रक्त और हड्डी में शारीरिक स्थिति का नमूना! अशिक्षित, अज्ञान और स्वास्थ्यप्रद आदतों से अनभिज्ञ ! इस पर जल्दी से जल्दी उस पर मातृत्व का बोझ लाद दो । उसके निर्बल पुत्र को ऐसी भयानक दुष्ट आदत सिखाओ जिससे दिन पर दिन उसकी मानसिक शक्ति क्षीण होती जाय । उसे व्यायाम का कोई मौका मत दो । ऐसी आदतें उसे सिखला दो जिससे तीस वर्ष की अवस्था पर पहुंचने तक वह निर्बल और वृद्ध ढचरे मे परिणित हो जाय और तब क्या तुम पूछोगे कि उसकी मानुसिक शक्ति कहां गई ?

जनसमुदाय को लो, जिसमें से अधिकतर ग्रामीण, अशिक्षित और अज्ञान में पड़े रहने के प्रेमी हैं। यदि स्त्रियों को तुम शिक्षा का कार्य सौंपते हो तो तुम उनका पर्दा हटाकर उन्हें नाश की ओर प्रवृत करते हो, फिर तुम पूछोगे कि शिक्षा का प्रचार क्यो धीरे २ हो रहा है? उपरोक्त स्थितियों में पले हुए शरीर और मस्तिष्क को देखो, फिर क्या तुम पूंछोगे कि उनकी मृत्यु संख्या क्यो अधिक है और वह गरीब क्यो है?

अंगरेज, रूसी या जापानी कोई शासक होजाय अथवा भारतीय राजा देश को आपस में बांट लें अथवा कोई शासन जो वर्तमान से अधिक उत्तम हो स्थापित कर दिया जाय पर एकमात्र शक्ति जो कि भारत वासियो को स्वतन्त्रता की ओर अधिक वेग से आगे बढ़ा सकती है वह भारतवासियो की ही शक्ति है जिसका अपव्यय बातूनी जमा खर्च, दूसरों पर दोषारोपण करने में न करके दृढ़ता के साथ उस कार्य मे ही लगाई जानी चाहिये जिसकी उनके शरीर और आत्मा के लिये इतनी आवश्यकता है।

द्वितीय प्रकरण

गुलाम प्रकृति

अंग्रेज सरकार तो भारतवर्ष की उन्नति करने में भरसक चेष्टा कर रही है पर सब कुछ स्वयं भारत वासियो का ही दोष है और यदि वे घोर विघ्न न डालें तो उनके देश का बहुत कुछ उद्धार हो जाय। इतने स्कूल, इतने अस्पताल, इतने पुल, इतनी सड़कें, इतनी नहर, इतने नये बाजार, इतनी देश की उपज में बढ़ोतरी यह सब ब्रिटिश सरकार ने ही तो की है। यदि यह देश अमरीका की भांति शीघ्रता से उन्नति नहीं कर रहा है तो उसका कारण यही है कि शिक्षित भारतवासी मुख्य क्रियात्मक कार्य की ओर हृदय और परिश्रम लगाने की चेष्टा नहीं करते। सार्वजनिक कार्यकर्ताओ को जन समुदाय के हितकी कोई चिन्ता नहीं है। वे तो एक उसी शक्ति के कोसने में लगे हुएहैं जो कि दुखी भारत माता के हितके लिये यथा सम्भव कार्य कर रही है।

भारतवासियों की जन संख्या प्राय: ३१९,०००,००० है। यदि इनमें से देशी राज्यो की जन संख्या निकाल दी जाय तो ब्रिटिश भारत की जन संख्या २४७,०००,००० रह जाती है। इसमें दो लाख से कम अंग्रेज, पुरुष, स्त्री और बच्चे रहते हैं। कुल साठ हजार से कम अंग्रेज सेना के भिन्न २ पदो पर हैं। ३४४२ अंगरेज़ इन्तिजामी विभाग मे हैं जिसमें सिविल सर्विस, इञ्जीनियर, डाक्टर, जंगलात विभाग, रेलवे, खान, शिक्षा, कृषि,

पशु चिकित्सा आदि सब ही सम्मिलित हैं। पुलिस विभाग में करीब ४००० अंगरेज हैं। इस तरह से भारतीय शासन में अंगरेज इस प्रकार हैं—

फौज	६००००
सिविल सर्विस	३४३२
पुलिस	४०००

भारतवासी इन्हीं मुट्ठी भर आदमियों के ऊपर यह दोषारोपण करते हैं कि वे देशको पीस रहे हैं और उन्होंने २४७०००००० मनुष्यों को गुलाम प्रकृति का बना डाला है। लेकिन इस बात को नहीं भूल जाना चाहिये कि अंगरेजों के पहले भारतवर्ष या तो भिन्न २ राजाओं के परस्पर कलह का क्षेत्र बना हुआ था अथवा विदेशी सत्ता के नीचे पिलपिला रहा था। यदि किसी देशी राजा ने दूसरों को आधीन भी कर लिया तो भी उसका राज्य कभी सम्पूर्ण भारतवर्ष पर नहीं हुआ और उसका शीघ्र ही अन्त हो गया। मध्य एसिया से बार २ विजयी सेनाएं यहां आईं और हिन्दू चुप चाप पड़े रहे।

भारतवासियों के पतन का सारा ढांचा चाहे धार्मिक हो चाहे सांसारिक—गरीबी, रोग, अज्ञान, राजनैतिक आधीनता, उदासीनता, कमजोरी और मानसिक मातहती जिसको वह कभी नहीं भूलता,—एक उसकी शारीरिक अवस्था रूपी चट्टान के आधार पर स्थिर है। यह आधार है केवल उसका संसार में रहने का तरीका और उसका घरू जीवन।

साधारणतया एक भारतीय लड़की ऋतु-धर्म प्रारम्भ होने के नौ ही महीने बाद अथवा आठ और चौदह वर्ष के बीच में किसी आयु पर माता होने की इच्छा रखती है। प्रायः आठ वर्ष या ऐसी ही उम्र में सिवाय कुछ लोगो को छोड़ कर ऐसा कम होता है पर चौदह साल की अवस्था कहना अधिकांश लोगों के लिये ठीक है। छोटी उम्र में विवाह और दूषित रहन सहन पीढ़ियो से चले आने के कारण अब उसकी शारीरिक अवस्था बहुत कमज़ोर होती है। वह बिल्कुल निरक्षरानन्द होती है और उसके ज्ञान की सीमा घर के देवी देवताओं और भूत प्रेतों के मनाने और अपने पति की जोकि धार्मिक विधानके अनुसार उसका ईश्वर है, विधि पूर्वक सेवा करने तक ही परिमित होती है। और पति—वह बालक भी या तो कठिनता से उसी के बराबर हो या पचास साल का रंडवा हो जिसे कि शुरू में ही उससे अपने वैवाहिक दस्तूर को पूरा करने की आवश्यकता है। किसी भी दशा में सम्पूर्णता प्राप्त होने से पहले या समाप्त हो जाने पर पति में शक्ति बहुत कम रह जाती है। इससे छोटी सी माता के लिये गर्भ धारण करना घातक और पीड़ात्मक होता है।

यदि बच्चा प्रसव वेदना से बच भी रहता है तो भी कमज़ोर जीवनी-शक्ति-विहीन, दुर्बल हड्डियो वाला और कोई भी बीमारी जो फैल रही हो उसके शिकार होजाने वाला होता है और उसका लालन पालन का भार उसकी बच्ची माता पर ही पड़ता है। वह स्वास्थ्य के नियमों से अनभिज्ञ होती है और उसका पथप्रदर्शक होते हैं घोर अन्ध विश्वास। उसकी इस कार्य मे सहायता करने वाला बुड्ढी

औरतों के अतिरिक्त कोई भी नहीं है जिनका ज्ञान भी इतनी अवस्था में भी स्वयं उनसे अधिक नहीं होता । समाज में स्त्री का जो स्थान है उसमें उसे चाहे वह नीच जाति की हो या ऊँच जाति की सिवाय बच्चे पैदा करने के और बात चीत करने का कोई विषय नहीं होता, इसलिये बच्चे शीघ्र ही स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध को समझने लग जाते हैं ।

शिव जो हिंदू देवताओं में एक प्रधान देवता हैं, उनकी मूर्ति सार्वजनिक और निजी मन्दिरों में लिङ्ग के स्वरूप में पूजी जाती है । विष्णु के अनुयायी जिनकी संख्या दक्षिण में बहुत अधिकहै अपने माथे पर सृष्टि उत्पत्ति की क्रिया के चिह्न माथे पर बचपन से ही लगाये रहते हैं और यह स्वीकार किया जाता है कि इन चिह्नों के अविष्कार-कर्त्ताओं का अभिप्रायः धार्मिक उन्नति के साथ साथ साधारण मनुष्यों के लिये प्रवृत्ति मार्ग की ओर धार्मिक आज्ञा देने का था ।

यदि यह चिह्न न भी होते तो भी धर्मग्रन्थ और मन्दिर की दीवारें और महलों के फाटकों की चित्रकारी की कमी नहीं है जिनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धी प्रत्येक बातें दिखलाई गई हैं । इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्त्री के मुंह पर ऐसे सीठने रहते हैं । तात्पर्य यह कि बच्चों के हृदय में चारों तरफ से यही भाव भर जाते हैं ।

देश के अनेक भागों में—उत्तर और दक्षिण—इन स्थिति में पला हुआ बालक यदि वह सुन्दर हो तो बड़ी अवस्था वाले आदमियों की तृप्ति के उपयोग के लिये ढाला जाता है अथवा वह किसी मन्दिर के साथ इन व्यवसाय को

नियमित रूप से करने के लिये नियुक्त कर दिया जाता है। साधारणतया माता पिता भी इसमे कोई हानि नही देखते वरन् इस बात का अभिमान करते हैं कि उनका लड़का अन्य लोगो को प्रसन्न कर सकता है।

यह मामला भी न तो श्रेणी का है और न किसी विशेष अज्ञान का। यथार्थ मे अच्छा और बुरा देखने से, जैसा कि हम देखते है, वे इतना दूर है कि माता चाहे वह नीची जाति की हो या ऊँची जाति की इस बात की चेष्टा करती है कि उसकी लड़की 'आराम से सोवे' और लड़का 'पुरुषत्त्व प्राप्त करे' जिसका दुरुपयोग कम से कम लड़का तो जीवन पर्यन्त करता है। भिन्न २ विभागो के बड़े २ डाक्टरो का कहना है कि करीब २ हरएक लड़के के शरीर मे इस बुरी आदत के चिह्न चाहे वे किसी भी कारण से हो पाये गये। बचपन में शारीरिक अवस्था पर क्या प्रभाव होता है इस पर कुछ भी मत हो परन्तु बालक के प्रारम्भिक विचारो पर जो प्रभाव पड़ता है वह अनदेखा नही किया जा सकता। शारीरिक सम्पूर्णता प्राप्त करने पर जब वह लगातार इस दुरप्रभाव को उपयोग मे लाता है तब उसके शरीर और शक्ति की क्षीणता के विषय मे प्रश्न करने की आवश्यकता ही नहीं है।

पाश्चातीय प्रभाव के कारण बालविवाह पर गत कुछ वर्षों मे बहुत वादविवाद हुआ है और उसके विरुद्ध भारतीय मस्तिष्क मे ऐसे भाव उत्पन्न हो रहे है परन्तु अब तक वे कार्य में बहुत कम परिणित हो सके है और अब भी अधिकांश कट्टर हिंदू प्राचीन प्रथा के पक्ष मे ही पाये जाते हैं।

प्रचलित हिन्दू धर्म में किसी भी दिशा में और अधिकतर स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में आत्म-संयम बहुत कम पाया जाता है। एक हिंदू बैरिस्टर जो अपने प्रान्त में सब से अच्छे आदमियों मे एक हैं उन्होंने मुझ से कहा "मेरे पिता ने मुझे बुरे लोगो के संगत में न जाना सिखला कर बड़ी बुद्धिमानी की" मैंने कहा "क्या यह अच्छा नहीं होता यदि वह तुम्हें आत्म-संयम सिखला जाते?" "लेकिन हम जानते हैं कि वह असम्भव है"। सहस्रों हिन्दुओं के एक श्रद्धेय गुरु और वेदान्तवादी ने मुझ से कहा "इन मामलों में ठीक और ग़लत का कोई सवाल नहीं उठ सकता। मैं जैसे ही एक काम को कर चुकता हूँ उसे भूल जाता हूँ। मैं केवल अपनी स्त्री की प्रसन्नता हो के लिये, जोकि इतनी ज्ञानवान नहीं है जितना कि मैं, यह सब करता हूँ। एक काम को करना या न करने का भेद कुछ नहीं है। यह बातें सब मायावी संसार की हैं।"

उपरोक्त बातों के पश्चात् यह कहना आश्चर्यजनक न होगा कि देश के एक छोर से लगाकर दूसरे छोर तक औसतन ३० वर्ष का हिन्दू पुरुष वृद्ध हो जाता है बशर्ते कि उसे आनन्द प्राप्त करने के साधन प्राप्त हों और पच्चीस वर्ष की अवस्था से तीस वर्ष की अवस्था वाले ८० से ९० प्रति शत तक नपुंसक हो जाते हैं। इसमें उन किसानों को छोड़ दिया गया है जो कि अपनी निर्धनता और शारीरिक परिश्रम के कारण शहर के रहने वालों अथवा साधन प्राप्त धनी मनुष्यों की भांति जल्दी चङ्गुल में नहीं फंसते। भारतीय समाचार पत्रों में जो विज्ञापन निकलते हैं उन पर दृष्टि डालने से इसकी सचाई अनुभव हो सकती है। उनके कालम के

कालम जादू का असर करने वाली दवाओं अथवा यन्त्रो से भरे रहते है वह चाहे राजा और अमीर आदमियों के ही लिये हो अथवा कम कीमत पर प्रसिद्ध एक रुपये मे 'क्षीण शरीर को स्तम्भित करने वाली गोलियो' के हो। सिर्फ पंजाब मे ही २९ दिसम्बर १९२२ से लेकर ४ दिसम्बर १९२५ तक सरकार ने ११ देशी भाषाओं के पत्रों पर अश्लील विज्ञापन छापने पर मामले चलाये। सात मामले हिन्दुओं पर तीन मुसलमानो पर और एक सिक्ख पर था। इन पर पच्चीस रुपये से लेकर दोसौ रुपये तक जुर्माना किया गया और एक मामले मे ९० दिन की सख्त सजा भी। यह याद रखना चाहिये कि यह मामले उन्ही पत्रों पर चलाये थे गये जिनमे साफ २ और अश्लील से अश्लील शब्दो मे शारीरिक क्रियाओं का वर्णन था।

इसका एक स्पष्ट उदाहरण एक उच्च श्रेणी के हिन्दू सज्जन के कार्य से प्रकट होता है जिसमें उन्होने अपने भावी दामाद से एक अंगरेज डाक्टर द्वारा इस बात का प्रमाण पत्र मांगा था कि उसमे पुरुष शक्ति है। कारण स्पष्ट है कि निःसन्तान कन्या का दोष माता पिता पर लगता है और निःसन्तान होने का दोष यद्यपि साधारणतया: स्त्री पर ही लगाया जाता है परन्तु बहुधा उसका कारण पुरुष ही होता है।

'स्त्री के सन्तान उत्पन्न करने मे लगातार असफलता प्राप्त करने पर हिन्दू पति के पास अन्तिम शस्त्र यही रह जाता है कि वह भेट सामग्री लेकर उसे तीर्थ यात्रा के लिये भेज दे। यह भी

कहा जाता है कि बहुत सी जाति समय बचाने के लिये विवाह के बाद पहली ही रात्रि को वहां भेज देती हैं। दिन में स्त्री मन्दिर में पुत्र के लिये प्रार्थना करती है और रात्रि में वह मन्दिर के पवित्र स्थान मे सोती है। प्रातःकाल होने पर वह पुजारी को एक कहानी कहती है कि अंधकार के पर्दे में उस पर क्या वीती। पुजारी उत्तर देता है गुण गान करो, वह स्वयं देवता थे और इस प्रकार वह घर लौट आती है। यदि बच्चा उत्पन्न हो जाता है तो वह एक वर्ष बाद अन्य भेंटो के साथ बालक के सिर के बाल लेकर फिर उसी मन्दिर मे जाती है।'

'मंदिरों में जाने वाले दर्शक प्रायः पेड़ों की शाखों मे चिथड़ो में बंधी सैकड़ों पोटलियां लटकती हुई देखते हैं और जड़ों के पास काले बालों के गुच्छों का ढेर लगा हुआ देखते हैं। यह देवता के मन्नत किये हुए पेड़ हैं। यह अपने लाभ की घोषणा करते हैं। मन्दिर की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये इस कार्य के पुजारी नये और तगड़े ही चुने जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य इन सब बातों को समझता है परन्तु धार्मिक विश्वास उनके मस्तिष्क को भली प्रकार रंगे हुए हैं और वे इससे सन्तुष्ट रहते है।'

'हिन्दुओं की 'गुलाम प्रकृति' के विषय में काफी कहा जा चुका है अब यह भी बतलाना ठीक होगा कि उनमें सच्चे और स्थायी नेता क्यों नहीं पैदा होते? भारतवासी केवल ऊपरी वर्तमान दशा को ही देखते हैं, वह उसकी तह तक नहीं पहुँचते। 'हमारे सब से महान पुरुष—जिन्हें हमारा नेतृत्व करना चाहिये—इतनी छोटी आयु में ही काल के ग्रास क्यों बन

जाते हैं' और अन्त मे वह इसी परिणाम को पहुँचता है कर्म ! किस्मत ! अटल भाग्य ! डाक्टर हरिप्रसाद कहते हैं कि 'हमारी औसतन आयु २३ वर्ष है और उसका कारण वे बुरी चिकित्सा बतलाते हैं। इस पर वे सच्चाई को छिपा कर अपना उत्तरदायित्व दूसरे पर पटकने की चेष्टा करते है परन्तु बम्बई के एक ब्राह्मण चिकित्सक के कथनानुसार भारतवासियो के राष्ट्र के पतन का सारा कारण अतिशयता के दोष के कारण जीवन शक्ति का दिवाला निकल जाना है।'

'इन सब बातो से यह परिणाम निकलता कि एक मनुष्य जो दिवालिये माता पिताओं से उत्पन्न होकर, क्षीण शक्तियां लेकर संसार में उत्पन्न होता है, नाशक स्थिति और आदतें उसकी बची खुची शक्तियो को हड़प करती जाती हैं, बड़े होने पर वह अपना सारा वीर्य लगातार समागम द्वारा उंडेल देता है और फिर उस अवस्था मे जिसमे ऐंग्लों-सेक्सन जाति का एक मनुष्य खिल कर पूर्णता प्राप्त करता है उस समय वह असमर्थ, साहसहीन, चिड़चिड़ा हो जाता है और जब तक स्थिति में परिवर्तन न हो क्या अन्य कारणों को ढूंढ़ने की आवश्यकता है कि वे निर्धन, और गरीब क्यो हैं और वह इतनी जल्दी क्यो मर जाते है ? उनमें शक्ति क्यों नहीं है और उनके हाथ शासन छीनने या थामने में क्यो हिलते हैं ?'

तृतीय प्रकरण

'बड़ी २ बातें'

मिस मेयो इस प्रकरण में कहती हैं कि सरकार चाहती तो यह है कि भारतवासियों के लिये सामाजिक सुधार के कानून बनाये पर कट्टर हिन्दुओं के विरोध के कारण भयभीत है। उसे दो बात का ख्याल रखना पड़ता है एक तो यह कि वह कानून किसी तरह धार्मिक सिद्धान्तो में हस्तक्षेप न करे और दूसरा यह कि वह ऐसे कानून न बनाये जो क्रियात्मक रूप मे लाये ही न जा सके क्योंकि उनका परिणाम धार्मिक पागलपन, रक्तपात और विद्रोह ही होता है। हिन्दुओ की वर्त्तमान मानसिक अवस्था मे लड़कियो के विवाह की उम्र बढ़ाने का कोई कानून स्वीकृत नहीं हो सकता सिवाय इसके की विवाह बन्धन के अन्दर स्वीकृत की आयु बढ़ा दी जाय और सन् १८९१ मे घोर वाद विवाद के पश्चात् यह अवस्था दस से बारह वर्ष को बढ़ाई जा सकी। इसके पश्चात् भी और अवस्था बढ़ाने के लिये कई स्वीकृत-बिल पेश हुए पर कट्टर हिन्दुओं के विरोध के कारण गिर गये। ऐसे अवसरो पर वायसराय की सरकार की यही नीति रही है कि वह महान् उद्देश्य को तो न भूले पर कोई ऐसा काम भी न करे जिससे जनता मे असन्तोष पैदा हो। एक ओर कट्टर हिंदू चिल्लाते हैं कि तुम्हे पति और पत्नी को जुदा करने का क्या अधिकार है दूसरी ओर सुधारक चिल्लाते हैं कि शासन के प्रत्येक अंगरेज उन लोगो के बीच मे रोड़े फेंक रहे है जो आगे

जाना चाहते हैं। रायबहादुर बख़्शी सोहनलाल ने स्वीकृति की अवस्था चौदह साल तक बढ़ाने का बिल पेश करते हुए कहा कि उच्च जातियो के नवजात शिशुओ और नई विवाहिता पत्नियों के भयङ्कर मृत्यु संख्या का कारण ऋतुवस्था के योग्य होने अथवा शारीरिक अवस्था पूर्ण होने के पहिले समागम करना है। इस प्रकार के शारीरिक योग्यता के पहिले समागम का परिणाम न केवल माता के स्वास्थ्य को ही घातक होता है बल्कि प्रायः ऐसी सन्तान उत्पन्न होती है जो बहुत कमजोर और रोगी होती है और अधिकतर साधारण रोग या मौसम की ख़राबी को भी बर्दाश्त नही कर सकती। इस प्रकार उनमें से कुछ जन्मते ही मर जाते हैं अथवा कुछ आगे चलकर। यदि वे जिन्दा भी रहते है तो उन्हे हमेशा वैद्य डाक्टरो की ज़रूरत रहती है अथवा दूसरे शब्दो में वे डाक्टरी पेशो को तरजीह देने के लिये उत्पन्न होते हैं न कि वे अपने कुटुम्ब के लिये या अपने देश के लिये। न वे अच्छे सिपाही हो सकते हैं। न शासक और न वे शत्रु, चोर अथवा डाकुओ के हमले से अपनी रक्षा ही कर सकते हैं। संक्षिप्त में उनका जन्म उनके माता पिता का स्वास्थ्यशक्ति और धन को समाज के लिये बिना प्रतिफल दिये हुए नष्ट करने को ही होता है। पति को अधिकतर अल्पायु पत्नी की प्रसवपीड़ा से हुई मृत्यु के कारण कई वार विवाह करना पड़ता है।" इस विषय के वाद विवाद से यह भली प्रकार प्रकट होता है कि भारतीय व्यवस्थापक परिषदो के सदस्य ज़बानी जमाखर्च मे तो कम से कम इस बात से सहमत हैं कि जब तक पूर्णावस्था प्राप्त न हो जाय तब तक मातृत्व न लादा जाय पर वे समझते हैं कि

यह तब तक कठिन है जब तक लड़कियों की विवाहावस्था न बढ़ाई जाय परन्तु यह इन कारणों से असम्भव है (प्रथम)–हिंदुओं की रीतियों के कारण कि उनमें विवाह से पहले ऋतुदर्शन होना पाप समझा जाता है। दूसरा यह कि कन्या का पिता इस बात का साहस नहीं करता कि वह कन्या को घर बैठाये रहे और ससुराल जाने से पहले ही चत होजाय क्योंकि संयुक्त कुटुम्ब प्रथा में बहुत से पुरुष और लड़के–भाई, भतीजे और चाचा–एक ही मकान में रहते हैं। तीसरा यह कि पिता को यह साहस नहीं होता कि ऋतुदर्शन के बाद वह कन्या को बाहर निकलने दे।

एक अन्य विद्वान् ब्राह्मण सदस्य दीवान टी रंगाचार्य ने स्वीकृत-बिल का विरोध करते हुए कहा 'हमारे देश में बारह से चौदह साल तक की कन्याओं की स्थिति का अनुभव करिये। क्या हमारे गृह में पुत्री नहीं हैं? क्या हमारे घर में बहिनें नही हैं? इसको स्मरण करो और अपने पड़ोसियों का स्मरण करो। अपनी आदतों का स्मरण करते हुए, अपने युवकों की शीघ्र पकता, मौसम और देश की वर्तमान अवस्था को ध्यान में रखते हुए मैं आप से इस विषय पर विचारपूर्ण निश्चय प्रकट करने की प्रार्थना करता हूँ।'

इसी प्रकार यह समझाने की कोशिश की गई कि कोई भी साधन जो अल्पायु पत्नी की रत्ता के लिये किया जायगा वह हिंदुओं के पवित्र धार्मिक विवाह बन्धन पर आक्रमण समझा जायगा और उसका परिणाम केवल रक्तपात और विद्रोह के अन्य कुछ नहीं होगा।

रायसाहब हरविलास सारदा के मत में जहां कोई सामाजिक कुरीति अथवा धार्मिक विश्वास हमारे मनुष्यत्व के भावों पर आक्रमण करे अथवा समाज के एक असहाय अङ्ग पर अत्याचार करे वहां शासन को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। तीन या चार वर्ष की कन्या का विवाह करना और आठ या नौ वर्ष की कन्या से समागम करने देना कहीं भी मनुष्यत्व के भावों पर आक्रमण करता है। लेकिन पण्डित मदनमोहन मालवीय का विचार और ही है "मुझे कठिन स्थिति का सामना करना है। जहां कि कन्याओ का विवाह साधारणतया बारह वर्ष से पहले ही हो जाता है और उसके बाद विवाहित युगल जोड़ी को मिलने से रोकना असम्भव है।......मेरे विचार में शायद यह सब से उत्तम है कि हम क़ानून को तो ऐसा ही रहने दें जैसा कि वह है और इस बात मे विश्वास रक्खें कि शिक्षा और सामाजिक सुधार विवाहावस्था को उचित सीमा पर ले आवेंगे।......महोदय! मुझे इस बात में पूर्ण विश्वास है कि इस ओर बहुत कुछ उन्नति की जा चुकी है। अनेक प्रान्तो मे ऊंची जातियो में विवाह करने की आयु बढ़ रही है......यह केवल ग़रीब ही जातियां है जो ज्यादातर इसका शिकार होती है। बाल विवाह ऊंची जातियों के बनिस्बत ग़रीब लोगो मे ही ज्यादा होता है"।

एम. के. आचार्य ने इस सम्बन्ध में कहा—"भारतवर्ष मे प्रतिष्ठित लोगों में इसके पक्ष मे बहुत ही कम मत है जो इस सुधार को अत्यन्त आवश्यक समझते है। यदि वह धीरे धीरे उनके समाज में आ जाय तो कोई हानि नही है। वास्तव मे हम जब तक शिमला मे है तब तक माननीय सदस्यों के लिये यह केवल व्यवस्थापकीय मनोविनोद का विषय है"।

चतुर्थ प्रकरण

जल्दी विवाह करना जल्दी मरना

सीमा प्रान्त के प्रतिनिधि नवाब सर साहबजादा अब्दुल-कय्याम कहते हैं मैं इस बात से सहमत हूँ......पुरुष के विवाह की एक आयु और स्त्री के विवाह की एक दूसरी आयु नियत कर दी जाय......परन्तु मेरे विचार में देश अभी तय्यार नहीं है। सोचिये कौन चालान करने वाला होगा, कौन जांच करेगा, कौन गवाह होंगे और कौन फैसले को अमल में लावेगा। ......तब एक दूसरी कठिनाई है कि तुम एक नव पति पत्नी का विवाह हो जाने देते हो, उन्हें साथ २ रहने देते हो और उन्हें उत्तेजना उत्पन्न होने का अवसर देते हो और फिर तुम इसलिये क्योंकि वे एक नियत आयु पर नहीं पहुंचे हैं समागम करने से क़ानूनन रोकते हो......मान लो यह क़ानून कार्य रूप मे लाया गया और तुमने नवीन पति पत्नी को समागम करने से रोका तो इस प्रकार तुम अधिकतर उन्हें बाज़ार में भेज दोगे......जब तक तुम छोटी अवस्था में विवाह होने की आज्ञा देते हो तब तक कोई संतोषजनक कारण नहीं है कि तुम क़ानून बनाओ और उनके व्यक्तिगत जीवन में बाधा डालो।" अनेकों का विश्वास है कि क़ानून के रहते हुए भी बाल पत्नियों का उपयोग पति के पवित्र अधिकारों के अन्दर प्राकृतिक प्रेरणा के आदेशानुसार ही होता रहेगा। 'सामाजिक प्रगति के लिये क़ानून बनाना' यद्यपि उसका कार्यरूप में आने की कोई आशा नहीं है तो भी उसका शिक्षात्मक प्रभाव जाति पर

पड़ता है और इसलिये वह संतोषपूर्वक पूर्ण-कार्य समझा जा सकता है। यहां तो ज़बानी जमा खर्च है और 'लोगो मे शिक्षा का प्रचार होना चाहिये' 'उनको वह मार्ग ग्रहण करना चाहिये जो मैं बताता हूँ' इस प्रकार कह कर वह हाथ साफ कर लेता है। बस उसका कर्त्तव्य समाप्त होगया।

दीवान बहादुर टी. रंगाचार्य ने ऐसेम्बली के सदस्यों को भाषण देते हुए कहा "क्या मैं माननीय मित्र से पूछ सकता हूँ कि इस हाल के बाहर वे इस विषय पर कितनी सभाओ मे बोले हैं? (एक आवाज़ 'कभी नही') क्या उन्होने अपने प्रान्त मे कभी एक सभा करके इन सुधारो की उपयोगिता पर भाषण दिया है? महोदय, यहां जहां कि आपके विचारो से सब सहमत है भाषण देना और कानून बनाने मे सहायता प्राप्त करना बहुत आसान है परन्तु······देश के सन्मुख जाना और अपने देश के पुरुषो और स्त्रियों को सहमत करना सहज नही है।

इसी प्रकार इन व्यवस्थापक सभाओ में उत्तरदायित्व का बोझ एक दूसरे पर उछाला जाता है। "यह केवल ब्राह्मण ही है जो अपनी लड़कियों का विवाह अबोधावस्था में कर देते है" या उसी तरह "यह सिर्फ नीची ही जाति है जिनमे ऐसी कुरीतियां प्रचलित है" और "कुछ भी हो बालविवाह के दुष्परिणामो को बहुत बढ़ा चढ़ा दिया गया है, इसके बीच में पड़ना बुद्धिमत्ता नही है और बालपत्नियों की रक्षा का कार्य धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं पर छोड़ देना उचित है। परन्तु इन राजनीतिज्ञों की इन हवाइयों और कल्पनाओ को छोड़ कर तुम वास्तविक स्थिति को देखते हो तो तुम को धक्का लगता है। भारतवर्ष की

गत जनसंख्या रिपोर्ट बतलाती है:—"प्रत्येक स्त्री का विवाह साधारणतया: ऋतुदर्शन या उसके तत्काल बाद ही हो जाता है और इसलिये हरएक हालत में ऋतुदर्शन के साथ ही समागम प्रारम्भ हो जाता है। इसकी भयानकता इसी से प्रतीत होती है कि प्रत्येक पीढ़ी मे ३,२००,००० बाल पत्नियो का प्रसव वेदना में ही अन्त हो जाता है। यह संख्या ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रान्स, बेलजियम, इटली और संयुक्तप्रदेश की महायुद्ध में सम्मलित मृत्यु-संख्या से भी अधिक है और यहां के निवासियों की शारीरिक अवस्था अन्तराष्ट्रीय सूची मे सवसे नीचे है।

सरदार वहादुर कप्तान हीरासिंह ऐसेम्वली मे कहते हैं—"महोदय! मेरे विचार मे बाल-मृत्यु को रोकने का सच्चा साधन यही है कि जो माता पिता ऐसी सन्तान उत्पन्न करते है उनके गाल पर चांटे लगाये जायॅ और अधिक हमारे उन मित्रो के चांटे लगाये जायँ जो निरोगी सन्तान उत्पन्न करने के लिये आयु अधिक करने का विरोध करते है।......क्या ९ और १० वर्ष के वालकों को पति और पत्नी कहना पाप नहीं है। यह शर्म की वात है (नही...नही की आवाज़)......हमारा दुर्भाग्य और हमारी सन्तान का दुर्भाग्य!...९ और १० वर्पकी लड़कियां, वालक जिन्हे पत्नी होने के स्थान में गुड़ियों से खेलते होना चाहिये, लड़को की माता हैं। लड़के जिन्हे स्कूल मे पाठ याद करते हुये होना चाहिये आधे दर्जन लड़के और लड़कियो के कुटुम्ब का लालन पालन कर रहे हैं.......मैं समाज में नही जाना चाहता। मुझे शर्म लगती है क्योकि यहां न मनुपत्व है न स्त्रीत्व। मुझे

समाज में जाते हुए शर्म मालुम होनी चाहिये जब १२ वर्ष की एक छोटी लड़की मेरी पत्नी है।......हम बात करते हैं...... यहां सैकड़ो तरह के जबानी जमा खर्च करते हैं लेकिन होता क्या है ? हम सब इसी भवन मे छोड़ जाते हैं, सब इसी मञ्च पर रह जाता है और हम घर कुछ भी नही ले जाते । स्वस्थ बालक एक बली राष्ट्र की जड़ है । हर एक जानता है कि भारतीय माता पिता स्वस्थ बच्चे पैदा नहीं कर सकते । उपयोगी बननेके लिये हमे दीर्घायु होना चाहिये परन्तु जब तक बाल विवाह न रोका जाय हम उसे प्राप्त नही कर सकते । "जल्दी विवाह करना और जल्दी मरजाना" भारतवासियो का मकूला है ।'

भारतीय वेश्याओं के विषय में यहां अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ बातें जो विशेषता लिये हुये हैं बतलाना अनुचित न होगा ।

देश के कुछ भागो में विशेषतया मदरास और उड़ीसा प्रान्त मे यह प्रथा हिन्दुओ मे प्रचलित है कि माता पिता देवताओं को प्रसन्न करके कुछ प्राप्त करने की इच्छा से इस बात का प्रण करते हैं कि उनकी भावी सन्तान अगर लड़की होगी तो वे उसे देवताओ के समर्पण कर देगे अथवा कोई विशेष सुन्दर बालक जिसमे किसी कारण से कुछ विशेष गुण समझे जाते हैं वह मन्दिर की भेट कर दिया जाता है । यह शिशु मंदिर की औरतों को दे दिया जाता है जो उन्हे नाचना और गाना सिखाती हैं । कभी वह पांच वर्ष की ही आयु में ही जब कि उसे बहुत मनभावना समझा जाता है पुजारियों की अधिकृत वेश्या बन जाता है ।

यदि आगे वह जीवित रहती है तो वह पूजा के समय ठाकुरजी के सामने नाचतीं और गाती है और मन्दिर के चारो ओर के मकानों मे भक्त यात्रियो के कुछ मूल्य पर उपयोग के लिये तय्यार रक्खी जाती हैं । इस समय वह सुन्दर वस्त्र और प्रायः देवताओ के जवाहरात और गहनो से लदी रहती हैं और जब तक उनका आकर्षण नष्ट नहीं हो जाता सुखमय जीवन व्यतीत करती हैं। इसके पश्चात् जिस देवता के पास रही हैं उनका चिह्न करके और थोड़ा सा भत्ता देकर वे सर्व साधारण से भीख मांग कर जीवन व्यतीत करने के लिये छोड़ दी जानी हैं। उसके माता पिता को चाहे वे ऊंची जाति और ऊंचे पद के हो उनकी कन्या के साथ इस प्रकार के व्यवहार से किसी प्रकार की लाञ्छना नहीं लगती। उनका यह कार्य अत्यन्त प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है। वे और उसी तरह की अन्य कन्याओ की अलग ही एक जाति बन जाती है जिन्हें 'देवदासी' अथवा 'देवताओं की अप्सराएँ' कहा जाता है और उन्हे मन्दिर के साजो सामान मे आवश्यक समझा जाता है ।

इसलिये व्यवस्थापक सभा में जब स्वीकृत बिल पेश किया गया तो श्री रायबहादुर टी० रंगाचार्य ने इसका इसलिये विरोध किया क्योंकि वह मंदिर की वेश्याओ के लिये बड़े अत्याचार की बात होगी। देवदासियों की लड़कियो का किसी जाति मे विवाह नहीं हो सकता। चूंकि इन लड़कियो के लिये कोई वर नहीं मिलता इसलिये माताऐं बड़े जमींदारो से यह तय करती हैं कि वे उनके साथ रखेलियों की तरह रह सके और यदि लड़कियों की अवस्था बढ़ा दी जायगी तब कोई जमींदार उनको रखना नहीं चाहेगा और उसका

परिणाम यह होगा कि यह अच्छा सम्बन्ध नष्ट हो जायगा और लड़की को गरीब मा के सर पर ही गुजारा करना पड़ेगा।" उड़ीसा के सदस्य मि० मिश्र इसका समर्थन करते हुये कहते–है "वह बहुत प्राचीन समय से चली आती हैं·····विवाह बरातो और ऐसे दूसरे अवसरो पर और ठाकुर जी की स्तुति करने के लिये भी वे आवश्यक समझी जाती हैं·····वे जमीदारो और राजाओ को दे दी जाती है। इस पर कहा जा चुका है·····जमीदार कभी दलालो से लड़कियां नही लेते। होता इस तरह है कि जब किसी जमीदार या राजा का विवाह होता है तब उनकी पत्नी अथवा रानियां अपने साथ कुछ लड़कियां बांदियों की भांति लाती हैं·····लड़कियो को उड़ाना ऐसी कोई बात प्रचलित नही है और कोई भी प्रतिष्ठित जमीदार, राजा या एक साधारण व्यक्ति लड़कियां हॉसिल करने के ऐसे गंदे मार्ग को ग्रहण न करेगा·····हमे इन लोगो (छोटी लड़कियो) के लिये जो कि स्वयं अपनी देखभाल कर सकती हैं, सोचने की क्या आवश्यकता है ?" मि० मिश्र के इस व्याख्यान मे कई वार वाधाऐं दी गईं और 'वापिस करो' की आवाजें कसी गईं। ये पाश्चात्य भावो का प्रभाव है। यह सब वाते चाहें जितनी सच्ची हों पर वे इसे वाहर फैलने देना नही चाहते। दूसरे व्याख्याताओ के व्याख्यानो से पता लगता है कि देश मे कम से कम कल्पना में तो नवयुग का सञ्चार हुआ है परन्तु उन लोगों मे जहां कि सब कामो से विरक्ति ही अन्तिम ध्येय समझा जाता है वे जिस वात का अनुभव करते हैं उसे भी ठोस व्यवहार मे लाने के लिये एक दूसरी मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता है।

पंचम प्रकरण

समाज को खोदने वाले

उत्तर-पूर्वीय प्रदेश के एक नगर में एक छोटा पर्दा-अस्पताल है जो भारतीय स्त्रियो में वहुत प्रसिद्ध है। वहां इकट्ठे हुए भयभीत जीव प्रायः अपने घर के चार दिवारियों से प्रथम समय ही निकलने का साहस करते हैं और वे अव भी ऐसा साहस न करते यदि उन्हें रोग से पीड़ित होकर अपना घर न छोड़ देना पड़ता। मुसलमान तो सदैव ही और हिन्दू प्रायः पर्देदार गाड़ी मे छिप कर अथवा माल की गांठों की तरह एक छोटे से वक्स मे वन्द होकर जो कि एक वांस पर लटका होता है और जिसे दो आदमी उठाते हैं वाहर निकलती हैं। उनमे से कुछ सरकारी क्लर्कों की स्त्रियां हैं, अफसरो और व्यवसाइयों की पत्नियां हैं, गरीव और अमीर, ऊंच और नीच जो सव रोग से छटपटाती हुई यहां आती हैं पर यहां पर भी वे आपस मे जातिपांतिगत छूआछूत और धार्मिक घृणा के भावों को एक दूसरे के प्रति व्यवहार में लाती हैं।

पहले पहिल वर्षों तक इस अस्पताल में स्त्रियां वहुत कम आती थीं परन्तु अव करीव २ हर एक विस्तर घिरा हुआ है और वरामदो मे भी खाटों पर स्त्रियो की भीड़ भाड़ है और बीसो स्त्रियां जिनके लिये जगह नहीं है प्रवेश करने के लिये विनती कर रही हैं। उनमे घूमने से अनार्यों के काले चहरे, ब्राह्मणों के गेहुंए चहरे, उत्तरीय परसियन मुसलमानों के सुन्दर

चहरे, दक्षिण के भद्दे चहरे सब को आप असहाय और पीड़ित अवस्था के पर्दे मे से झाँकते हुए पायँगे । यहां अधिकतर स्त्रियो की ही चिकित्सा होती है । स्त्रियो मे अधिकतर अत्यन्त नव-युवती है । प्रायः सब ही रज सम्बन्धी रोगो से ग्रसित हैं ।

कुछ इसलिये आती हैं चूंकि वे निःसन्तान हैं और इस बात की प्रार्थना करती हैं कि उन्हे किसी दवा या आपरेशन द्वारा वह चीज प्रदान कर दी जाय जिससे भारतीय समाज मे भारतीय पत्नी को गौरवान्वित स्थान प्राप्त हो जाता है । 'इनमे से' अंगरेज़ सर्जन–सुपरिण्टेण्डेण्ट का कथन है "हमे निरन्तर यही ज्ञात होता है कि रोगी के एक सन्तान, प्रायः मरी हुई, हो चुकी है और अब सुजाक को छूत के कारण उसकी बच्चेदानी नष्ट हो गई है । उन नवयुवतियों की संख्या जो कि अपने विवाह के कुछ ही वर्षों मे इस प्रकार पीड़ित हो चुकी है भयङ्कर है । ९० प्रतिशत बच्चेदानी में सूजन का कारण सुजाक ही होता है ।

'यहां' उसने कहा जब कि हम एक छोटी लड़की के पास खड़े हुये जो कि हमारी तरफ एक भूखे जानवर की तरह देख रही थी । "यह एक नया रोगी है । इसके कई मरे हुए बच्चे हो चुके हैं । इसका पति तब तक उसे अपने पास नहीं रखेगा जब तक कि वह उसके लिये एक बच्चा पैदा न कर ले और इसलिये वह यहां बच्चा जनने के लिये आई है । इसे भी जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग है ।"

"इसे क्या मर्ज है ?" मैंने एक मृत्युग्रसित नवयुवती की खाट के पास रुक कर पूछा । डाक्टर ने कहा "वह एक हिन्दू

अफसर की स्त्री है । तीन दिन हुए वह द्वितीयवार प्रसववेदना के प्रारंभ होने पर हमारे पास उसे लाया क्योंकि पहली मर्तवा वह जिन्दा बच्चा न पैदा कर सकी थी । इसके अतिरिक्त वह हृद-रोग, सांस और टांग के टूट जाने से भी पीड़ित है और मुझे एक ही समय मे उसकी टांग ठीक करने और बच्चा पैदा कराने का कार्य करना पड़ा । उसकी आयु तेरह साल और कुछ महीने की है ।"

मैने एक पीले चहरे वाली बच्ची के पास जाकर जो अपने हाथो से एक कागज के खिलौने को पकड़े हुई थी प्रश्न किया 'इसे क्या मर्ज हो सकता' है "आह ! यह एक सरकारी प्राइमरी स्कूल मे पढ़ती थी······प्रफुल्ल मुख नन्ही बालिका ! इतनी तेज कि उसने छात्र-वृत्ति का पुरुष्कार प्राप्त किया था । पांच महीने हुए छुट्टियो मे उसके भाई ने उसे उस आदमी के पास भेज दिया जिसके साथ उसका विवाह हुआ था । उस आदमी की अवस्था पचास साल की है । उनकी दृष्टि से वह एक हिन्दू सज्जन हैं जिन पर किसी प्रकार का लाञ्छन नहीं लगाया जा सकता परन्तु हमारी दृष्टि से वह पशु है······आगे क्या हुआ उसे कहने मे यह नन्ही बालिका अत्यन्त भयभीत थी । सप्ताहो तक उसकी दशा नाजुक होती गई । अन्त मे उसका मस्तिष्क बिलकुल ही फिर गया तब उसकी बहिन जो कि यहां इलाज करा चुकी है उसे चुपचाप यहां ले आई ।"

"मैने इससे पहले कभी ऐसे सताये हुए प्राणी को नहीं देखा था उसके भीतरी जख्मो में कीड़े पड़ रहे थे । आने के कई दिन बाद तक वह यहां बेसुध पड़ी रही । उसके मुंह से आवाज तक

न निकली और करुणा पूर्ण निगाहों से देखती रही। एक दिन एक बच्चा जिसकी बांह टूटी हुई थी एक बिस्तरपर लेटरहा था और मैं वार्ड में जाते हुए उससे खेलने लगी। यह देख कर सम्भव है वह विचार करने लगी हो कि यहाँ सब क्रूर पिशाच ही नही हैं। दूसरे दिन जैसे ही मै गुजरी, उसके मुख पर मुस्कराहट की रेखा झलक उठी। पीछे उस दिन उसने अपने हाथ मेरी गर्दन में डाल लिये। उसके मस्तिष्क में यह विचार परिवर्तन का समय था। अब तक उसकी स्मृति में थोड़े दिनों पहले का ध्यान नहीं आया है। वह अपने खिलौनों के साथ पड़ी है, उनको वह आश्चर्य की दृष्टि से देखती है, आहिस्ता २ खेल रही है या अपनी आंखों से हमारा इधर उधर जाना देख रही है। वह अत्यन्त सन्तुष्ट है। इस बीच मे उसका पति अपने विवाह सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करने के लिये फिर उसे वापिस ले जाने की चेष्टा कर रहा है। उसकी अवस्था अभी तेरह वर्ष की भी नहीं है।"

मानसिक पतन के ऐसे उदाहरण कसरत से पाए जाते हैं। कोमल बच्चे चाहें वह निर्बल माता पिता की बजाय अच्छे से अच्छे वंश से ही क्यों न हों इस प्रकार के व्यवहार को कैसे सह सकते हैं? उपरोक्त उदाहरण एक धनी, शिक्षित और शहर में रहने वाले घराने का है और वह प्रायः ऐसा ही है जैसा कि मैंने एक इससे भी छोटे बच्चे को गांव मे देखा। बचपन में उसका विवाह कर दिया गया था और दस वर्ष की आयु मे उसे उसके पति को सोंप दिया गया परन्तु लगातार

विषय भोग में आना। उसके समर्थ से बाहर की बातथी। इसके बाद वह उसे पीटा करता और वह कोने में पोटली की तरह कांपती हुई सिकुड़कर बैठ जाती। अन्त में इस बुरे सम्बन्ध से निराशा और क्रुद्ध होकर उसने उसे अपने कन्धों पर उठाया और जंगल के परले सिरे परमरने के लिये छोड़ आया। वास्तव में वह मर जाती यदि एक अङ्गरेज स्त्री सूचना पाकर उसे अपने साथ न ले आई होती। शान्ति और सभ्य व्यवहारसे उसका विकाश होने लगा और मैंने प्रथमबार देखा कि वह अन्य बच्चों के साथ बाग में दौड़ रही थी और सन्तोष के साथ गुड़ियों से खेल रही थी। उसके अङ्गरेज संरक्षक जब तक सम्भव होगा उसे अपने पास रक्खेंगे पर उसके बाद ?

"इन बाल माताओं से क्या आशा की जा सकती है ?"— एक सच्ची अंगरेज महिला डाक्टर ने कहा "उनका शक्ति का अल्प भण्डार पहिले ही प्रसव में समाप्त हो जाता है। इस के बाद वह बिना पुनः शक्ति को प्राप्त किए हुए दनादन बच्चे पैदा करती जाती हैं। पांच पोण्ड का बच्चा बहुत हृष्ट पुष्ट समझा जाता है। साधारणतया करीब ४ पोण्ड वजन होता है। बहुत से बच्चे मरे हुए ही पैदा होते हैं और प्रायः सब ही बच्चे शक्ति हीन होने के कारण किसी भी बीमारी के जो फैल रही हो शिकार बन जाते है। यहां मेरे रोगी अधिकतर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की पत्नियां हैं। प्रायः सब ही रज सम्बन्धी रोगों से ग्रसित है। पहले पहल जब भारतवर्ष में मै आई मैंने इस बात का चेष्टा की कि ऐसे रोगियों के माता पिता से ... कर

घ—आयु ७ वर्ष-पति के साथ ही रहती थी, तीन दिन के बाद बड़े कष्ट से मर गई।

ङ—अवस्था प्रायः दस वर्ष-अस्पताल को पैरों और हाथों पर घिसट कर आई, विवाह के बाद फिर कभी सीधी न खड़ी हो सकी।

बाल विवाह पर महात्मा जी को एक भारतीय सज्जन ने जो शब्द लिखे वह बड़े मनोरंजक है कि "बालविवाह का मुख्य दोष यह बताया जाता है कि वह कन्याओं और बच्चों की तन्दुरुस्ती को कमजोर कर देता है परन्तु यह इसलिए विश्वासनीय नहीं मालूम पड़ता कि हिन्दुओं में विवाह की आयु बढ़ रही है परन्तु जाति निर्बल होती जाती है। अब से पचास साल पहले मनुष्य अधिक बलवान, तन्दुरुस्त और दीर्घायु होते थे। पर उस समय बाल विवाह जोरों से प्रचलित था- इसलिये इससे यह तात्पर्य्य निकलता है कि बाल विवाह से इतनी शारीरिक क्षीणता नहीं हुई जैसा कि लोग ख्याल करते हैं।" क्या बढ़िया तर्क है। सम्भव है लेखक मानता है कि बाबा के कर्मों का सम्बन्ध प्रपौत्र की हालत से कुछ है ही नहीं।

एक बङ्गाली स्त्री ने महात्माजी को लिखा "मैं नहीं समझती आपको हिन्दू समाज की बिचारी बाल-पत्नियों के पक्षमें बोलने के लिये कैसे धन्यवाद दूं? हम स्त्रियां चुपचाप शान्ति से सब कुछ सहन कर लेती हैं। उनमें किसी भी कुरीति से लड़ने की शक्ति बाकी नहीं रह गई है"

अब तक सिर्फ यही होता रहा है कि अपने इस नंगपन के आगे एक पर्दा डाल कर चलदें।

छठा प्रकरण

सांसारिक देवता

मैंने एक नरेश के उच्च और विद्वान् कर्मचारी से पूछा "यदि तुम्हारे एक बालिका होती तो तुम उसका विवाह किस अवस्था पर करते ?"

"पाच वर्ष-सात वर्ष-लेकिन मुझे निसन्देह उसका विवाह" उसने जवाब दिया "नौ वर्ष के पूरा होने से पहले कर देना चाहिये"

"और यदि तुम न करो तो क्या दण्ड हो और वह किसे भोगना पड़े ?"

"मुझे भोगना पड़े, मेरे जाति वाले मुझे बाहर कर दें। उनमें से मेरे साथ कोई भी भोजन नहीं करेगा, न पानी पीने को देंगे और न मुझे किसी नेगचार के अवसर पर बुलावेंगे। मेरे लड़के के साथ कोई भी अपनी लड़की का सम्बन्ध नहीं करेगा और इस प्रकार मैं जायज पौत्र से वञ्चित हो जाऊंगा। यथार्थ में मेरा कोई सामाजिक अस्तित्व ही नहीं रहेगा। यहां तक कि

कोई भी जाती। पुरुष मेरी अर्थी मुर्दघटे ले जाने में कन्धा भी नहीं लगायगा और दूसरे जीवन में, इसका प्रायश्चित और भी भयानक होगा।"

"स्वयम् बालिका-उस पर क्या बीतेगी?"

"बालिका? हां! अपने धर्म के अनुसार मुझे उसे अपने घर से निकाल कर जंगल में भेज देना चाहिये। उसे वहां निसहाय छोड़ देना चाहिए। उसके बाद मैं उसे कभी भी न देखूं न किसी हिन्दू को भोजन देकर अथवा हिंसक जीवों से उसकी रक्षा करनी चाहिये।"

"क्या तुम स्वयम् ऐसा कार्य वास्तव में करोगे?"

"नहीं। क्योंकि ऐसा अवसर नहीं आयगा। मैंने ऐसे पाप ही नहीं किए कि जिसका मुझे फल यह भोगना पड़े है"।

हिन्दू गृह-व्यवस्था में बालिका बहुधा भारी और दुखद हुण्डी है। उसका जन्म घर के अन्य लोगों के ऊपर वज्रपात का काम करता है लेकिन ऐसे निर्दयी बहुत कम मिलेंगे जैसा कि एक धनी जमींदार ने मुझ से कहा "मेरे बारह बच्चे हुए। दस लड़कियां, स्वाभाविक ही नहीं बचीं। कौन उनका बोझ बर्दाश्त कर सकता, दो लड़के, निसन्देह! मैंने उनका लालन किया।" सर माइकेल ओडायर जब भरतपुर के बन्दोबस्त कमिश्नर थे तब का एक अनुभव उन्होंने अपने एक भाषण में कहा "महाराज की बहिन पञ्जाब के एक बड़े सरदार के साथ ब्याही जाने वाली थीं तय्यारियां हो रही थीं। और महाराज

के कुटुम्ब के लोगों ने (महाराज अभी नाबालिग थे) अधाधुंध खर्च-साढ़े चार लाख से छः लाख रुपये तक-के लिये जो ऐसे अवसर पर एक साधारण बात है जोर दिया और रियासती कौंसिल ने भी इसका समर्थन किया। पालिटिकल एजेन्ट और मैंने, चूंकि रियासत इस समय ब्रिटिश सरकार की देख भाल में थी, इसका सख्त विरोध किया कि अकाल और कमी के समय मे इतना अपव्यय न किया जाय। अन्त में इस पर पूरी कौंसिल में बहस हुई। मैंने कौंसिल के सब से पुराने सदस्य से पूंछा कि पहले महाराजाओं की बहन या बेटियों के विवाह में कितना व्यय किया जाता था? उसने सिर हिलाया और कहा कि इससे पहला उदाहरण कोई भी नहीं है। मैंने कहा "यह कैसे हो सकता है? रियासत दो सौ साल से पहले की है और विना गोद लिये हुए ग्यारह पीढ़ी हो चुकी हैं और क्या तुम्हारा तत्पर्य यह है कि कभी लड़कियां हुई ही नहीं।" बुड्ढा जरा हिचका और फिर कहा "साहब! आप हमारी रिवाज जानते हैं; निसन्देह आप इसका कारण जानते हैं। लड़की पैदा हुई पर उन्हें जिन्दा नहीं रहने दिया गया।"

युक्त-प्रान्तीय जनगणना के अध्यक्ष अपने वक्तव्य में कहते हैं कि लड़कियों के प्रति घृणा नहीं तो लापरवाही जरूर की जाती है, लड़के का पालन माता पिता करते हैं और लड़की का पालन ईश्वर करता है। लड़की को कम गर्म कपड़े दिये जाते हैं, जब वह बीमार होती है तब उसकी कम तीमारदारी की जाती है और जब नीरोग होती है तब बहुत ख़राब भोजन दिया जाता है। सारा ध्यान लालन पालन और बढ़िया चीजें पुत्र पर ही समाप्त कर दी जाती हैं जबकि लड़की को उनकी बचनखुचन पर ही सन्तुष्ट हो जाना पड़ता है और इसका परिणाम यह होता है कि एक से पांच वर्ष की आयु में लड़कों से लड़कियों की मृत्यु संख्या अधिक है।'

मिस मेयो ने इस सम्बन्धमें एक विचित्र उदाहरण खोज नि
है—'इसका सचित्र उदाहरण स्वयं मुझे बंगाल के एक अस्प
में मिला। एक पांच या छः वर्ष की लड़की कुए में गिर गई
उसके सिर में एक भयङ्कर जख्म हो गया। माता मूर्छित
रक्त बहते हुए बच्चे को लेकर अस्पताल में सहायता के लिये भ
गई। एक या दो दिन में घाव भयङ्कर हो गया।
बच्चा मृत्यु-द्वार पर पड़ा था, स्थिति भयङ्कर थी और ज
महिला डाक्टर उसका इलाज कर रही थीं माता शोक और
की मूर्ति बन उसके पास सिकुड़ कर बैठी देवताओं की मि
कर रही थी। यकायक—पलंग के पास एक बंगाली बाबू आ
खड़ा हुआ।

"मिस साहब!" डाक्टर को सम्बोधन करते हुए कहा—
अपनी स्त्री के लिये आया हूं।" "तुम्हारी स्त्री" डाक्टर ने ते
से कहा "अपनी स्त्री को देखो! अपने बच्चे को देखो। तुम्ह
तात्पर्य क्या है?"

'मेरा तात्पर्य है' उसने कहा "मैं अपनी स्त्री को अपने प
सम्बन्धी व्यवहार के लिये घर लिवा ले जाने के लिये आया हूं।

"लेकिन अगर तुम्हारी स्त्री इस समय चली जायगी तो ब
मर जायगा। तुम उन्हें अलग नहीं कर सकते।" बालिका जो
पीड़ा के होने पर भी किसी तरह इस धमकी को समझ गई
चीखती हुई माता से चिपट गई। स्त्री जमीन पर लेट गई। उस
पति के पैरों को छुआ, विनती करते हुए उसके पैरों को चूमा औ
भारतीय प्रथा के अनुसार उसके पैरों की रज लेकर अपने मस्त
पर लगाई। उसने रोकर कहा "मेरे स्वामी! मेरे स्वामी! मुझ प
करुणा करो।"

"मेरे साथ आओ" पति ने कहा "मुझे तुम्हारी जरूरत है। तुमने मुझे बहुत दिन से छोड़ रक्खा है।"

"मेरे स्वामी—बालिका—छोटी बच्ची—मेरे स्वामी।"

उसने उस विनती की मूर्ति को एक लात जमाई "मैंने कह दिया" और फिर बिना कुछ दूसरे शब्द कहे या दृष्टि डाले वह चल दिया।

"क्या तुम इस आज्ञा का पालन करोगी?" महिला डाक्टर ने कहा।

"मैं अवज्ञा नहीं कर सकती" स्त्री ने सिसकते हुए कहा और अपने मुख पर पर्दा डाल कर वह आदमी के पीछे एक छोटे कमजोर जीव की तरह सिकुड़ती हुई दौड़ी।' (क्या यह भावुक बंगालियों का चित्र है, अथवा मिस मेयो की मानसिक कल्पना का आविष्कार है?)

इसके पश्चात् मिस मेयो ने पद्मपुराण के उदाहरण दिये हैं कि पति चाहे जैसा हो लूला हो, अपाहज हो, लम्पट व्यभिचारी हो और क्रोध से पत्नी के साथ चाहे जैसा व्यवहार करे पर पत्नी को उसे देवता समान ही मान कर पूजा करनी चाहिये। (फिर उन्होंने भारत के इस आदर्श की खिल्ली उड़ाई है। वास्तव में अमरीका भूमि में जहाँ कि तनिक २ सी बात पर विवाह विच्छेद हो जाना आदर्श समझा जाता है वहां की पली हुई मिस मेयो के संकुचित मस्तिष्क में हिन्दुओं के इस महान आदर्श का महत्व समझ में नहीं आता तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?)

जिन हिन्दुओं में वैवाहिक सम्बन्ध विषय तृप्ति के लिये नहीं वरन् एक धार्मिक विषय है उस सम्बन्ध में मिस मेयो अव्हे

दुबोइस के कथन का उल्लेख करती हैं। "भारतवर्ष में पति पत्नियों में अभिन्नता की इतनी बड़ी खाई है कि यहां के निवासियों के हृदय में स्त्री केवल इन्द्रिय तृप्ति का ही साधन है जिसे अपने पति की इच्छा और उचङ्ग पर चलना होता है। उसे एक साथी की तरह नहीं समझा जाता जो पति के विचार में सम्मलित हो और जो उसके प्रेम-और भावना को प्राप्त कर सके। हिन्दू स्त्री को अपने पति के रूप में एक अहङ्कारी और शासक स्वामी मिलता है जो उसे इसलिये भाग्यवान समझता है कि उसे उसके साथ सोना और भोजन प्राप्त हो जाता है।"

मिस मेयो हिन्दुओं की सम्मलित कुटुम्ब-प्रथा पर आक्र करती हुई कहती हैं—'पौराणिक व्यवस्था में वहू का सास प्रति कर्त्तव्य पर बड़ा जोर दिया गया है और इस जड़ पर एक स्त्री के जीवन का एक विशेष तथ्य निर्भर है। हिन्दू ग्रह विवाह से एक प्रथक गृह नहीं बसता। वरन् श्वसुर के घर ही बाल वहू आ जाती है और वहां वह सास की मानी हुई दा वन जाती है जिसके आश्रय पर उसे रहना पड़ता है। श्वसुर अ नन्द उससे मनमाना काम कराते हैं और जो चाहा खाने पीने देते हैं पर उसका विरोध करना उसकी शक्ति के बाहर है, उस मस्तिष्क मे किसी सीमा तक स्वतन्त्रता प्राप्त करने या विरो करने के भावों के लिये स्थान ही नहीं है। उसका अस्तित्व स करने के लिये ही है। प्रायः सास बड़ी निष्ठुर होती हैं और वि दया या स्नेह के उन पर शासन करती हैं, यदि वह बालि सन्तान पैदा करने में देर करती है या लड़कियां पैदा करती तब सास की जबान छूटने लगती है, उसके हाथ पीटने के लि मजबूत बन जाते हैं और दूसरे विवाह की धमकी दी जाती है मुझे देहात में चौदह से उन्नीस वर्ष तक की बलिकाओं

आत्म-हत्या के बहुत से उदाहरण मिले जिसका कारण भारतीय पुलिस के कथनानुसार 'वायु शूल और सास के साथ झगड़ा' था। मिस कौरनेलिया शोरावजी,जो अपनी गरीब और अमीर सभी बहिनों की स्थिति से भली प्रकार परिचित हैं कहती हैं "अपने पति की मुख्य पुजारिन, जिसकी पूजा करना उसका धर्म है और प्रसन्नता है..................धार्मिक, सामाजिक और मानसिक कार्यों में निम्न श्रेणी में चलती हुई, विनय और सौम्यता की मूर्ति परन्तु पति के जीवन के बड़े कामों में भाग नहीं ले सकती। सास को प्रसन्न करना और पति के लिये पुत्र उत्पन्न करना ही उसकी मनोकामना है। पूर्व मे विवाह का सम्पूर्ण तात्पर्य गर्भधारण करना ही है..........जब वह एक पुत्र की माता होती है तब ज़नानखाने में अन्य स्त्रियों द्वारा अधिक सम्मानित होती है......उसे सफलता प्राप्त हुई है, उसने अपने अस्तित्व का अधिकार ठीक साबित कर दिया है।" इसी प्रकार का एक उदाहरण मेरे सन्मुख उपस्थित हुआ। इस मामले में देहली के समीप के ही एक छोटे शिक्षित जमींदार की स्त्री प्रसव के लिये अस्पताल में लाई गई परन्तु देरी से भेजने के कारण बच्चा मरा निकला। दूसरी साल भी इसी ग़लती के कारण एक बड़े आपरेशन के होने पर भी बच्चा जीता न निकल सका। इसके बाद पति ने बुद्धिमानी की और तीसरी बार स्त्री को समय पर ही अस्पताल में भेजा। बच्चा पैदा होने के बाद अंगरेज मेम प्रसन्नता से उसके पास पहुँची और कहा—"नन्ही माता! भाग्यशाली नन्ही माता! क्या तुम अपने बच्चे को नहीं देखना चाहती—क्या नहीं देखना चाहती?" तकिये पर सिर घूमा और धीरे से निराशा की भयङ्कर निशा में से शब्द सुनाई दिये "एक मरे बालक को कौन देखना चाहता है.......मैंने बहुत से बच्चे मरे हुए देखे हैं—बहुत मरे हुये"—बस आवाज़ शान्त हो

गई और आंख के पलक बन्द हो गये। मेम ने बच्चे को उठा बच्चा रो दिया, उसी वक्त यह सब हो गया""पलंग पर पड़ी हु निर्जीव मूर्ति उठ बैठी, उसके नेत्र चमक उठे और उसने अपने हाथ तेजी से मांगने के लिये बढ़ाये। अपने जीवन में पहली वार शायद इस लड़की में आज्ञासूचक भाव आये हों।

"मुझे मेरा लड़का दो" वह उसी तरह बोली जिस त सम्भव है एक महारानी बोल सके "तुरन्त मेरे गांव को आद भेजो और लड़के के पिता को सूचना दो कि मैं उसकी उपस्थि की इच्छुक हूं" विशाल परिवर्तन! आत्म गौरव! स्वामित्व और उच्चता! पिता आया सब सगे-सम्बन्धी मक्खियों की तरह इकट्ठे होकर आये और दस दिन तक १५ फीट चौड़े औ २५ फीट लम्बे कमरे में एक दर्जन से अधिक आद बैठे रहे और दसवें दिन विजय का डङ्का बजाते हुए गां को वापिस गये।"

जहां मिस मेयो की मातृभूमि रूप रंग के उपासक अमरीक में माताएं सन्तान-प्रसव की उत्तरदायित्व और पीड़ा से पीछे हटती है वहां उन्हें आश्चर्य होता है कि भारतवर्ष में गरीब या अमीर ऊंची जाति या नीची जाति के सब को पुत्र की अभिलाषा है पर माता में ज्ञान का अभाव है और वह हौआ, भय, भूत प्रेत पूजना के अतिरिक्त कुछ शिक्षा नहीं दे सकती। वह कभी उसे नियमित आचरण (Discipline) यदि वह उसका अर्थ समझ भी सके तो नहीं सिखला सकती। वह कभी आत्मसंयम, जीभ या उसक को वश में रखने की शिक्षा नहीं दे सकती। वह यह तनिक भी नहीं जानती कि उसका लालन पालन किस तरह करना चाहिये। उसका विचार भली प्रकार भोजन करने का यही है कि वह डोरे से बच्चे

के पेट को बांध दे और तब तक खिलाये जाय जब तक वह डोरी टूट न जाय।"

उन्हें भारतवासियों की मातृभक्ति खलती है। वे कहती हैं— "अब भी जब लड़के का स्वयं विवाह होगा तब भी वह स्त्री से अपनी माता को अधिक समझेगा और माता अपनी बीती सब भूलकर अपनी बहुओं पर वही कड़ाई और अत्याचार करेगी जो कभी स्वयं उसे भोगना पड़ा है परन्तु वहू के लिये फिर ऊंचा होने का अवसर आता है जबकि उसके पुत्र उत्पन्न होता है। इस तरह यह प्रथा चलती चली जाती है।"



सप्तम-प्रकरण

पाप का दण्ड

इस अध्याय में मिस मेयो ने कुछ हिन्दुओं की उस जड़ता का आश्रय लिया है जिसके कारण वे बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का विरोध करते हैं और विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। इसी के आधार पर उन्होंने हिन्दुओं के पुनीत वैधव्य जीवन को खोद डालने की चेष्टा की है। वे कहती हैं इस देश में समझा जाता है कि स्त्री पर वैधव्य जैसे भयानक दुख पड़ने का कारण केवल पूर्व जन्म के महान् पाप ही हो सकते हैं। पति के मरने से अपने प्राणान्त तक--कष्ट सहन और आत्म-बलिदान में अपने पति की आत्मा से जकड़ी हुई-उसे उन पापो का प्रतिकार करना चाहिये। चाहे वह तीन ही वर्ष की बालिका हो जो यह भी नहीं जानती कि विवाह किस चिड़िया को कहते हैं या वह वास्तव में पति के साथ रही हो और पत्नी कहे जाने लायक हो। पति के मरने पर यह मालूम हो जाता है कि वह घोर पापिन और अशुभ है और जब वह बड़ी होकर यह सोचने लायक होती है तो वह स्वयं इस पर विश्वास करती है।'

ठीक होते हुए भी बहुत ही थोड़े ग्रहों के लिये यह कहा जा सकता है कि—'विधवा अपने श्वसुराल में सब से गई बीती समझी जाती हैं। भद्दे से भद्दे और कठिन से कठिन काम उसके सर पर ही पड़ते हैं--न कुछ आराम न शान्ति। वह एक बार भोजन करले और वह भी सब से बुरा। उसे बड़े २ व्रत करने चाहियें। उसके बाल मूड़ देने चाहियें। उसे किसी नेगाचार या खुशी के

अवसर पर, विवाह पर, धार्मिक उत्सव पर, भावी माता के सामने से और किसी भी आदमी के सामने से जिस पर उसकी आंखें विपत्ति ढा सकें हट जाना चाहिये। उससे गाली और घृणा के शब्दों में बात चीत की जाय और वह अपने इस दुर्व्यवहार को स्वयं सहन करती है क्योंकि अब इससे ही उसका उद्धार हो सकता है। वृद्ध फ्रान्सीसी यात्री वर्नियर का कथन है कि "वैधव्य की यन्त्रणाएँ स्त्रियों को अधिकार में रखने, रोग में उनकी सेवा प्राप्त करने और पति को विष देने से रोकने के लिये रक्खी गई है" और वास्तव में मुझसे एक हिन्दू ने कहा कि हम अपनी स्त्रियों के साथ प्रायः ऐसा अप्रिय व्यवहार करते हैं कि हमे भय रहता है कि वे हमें ज़हर न दे डालें।'

मिस मेयो का यह कथन कितना भ्रम पूर्ण है "विधवापत्नी अपने कपड़ों पर तेल छिड़क कर इसलिये जल मरती है क्योंकि उसने दूसरी विधवाओं के ऊपर किये गये अत्याचारों को देखा है। उसे एक टहलुई, दासी की तरह रह कर भूख और अत्याचार और गाली सहन करनी पड़ेगी, इसलिये वे यह मार्ग ग्रहण करके नर्क की पीड़ा से बच जाती हैं और भविष्य जीवन में अधिक सुखी होने की आशा कर सकती हैं। धार्मिक ग्रन्थों में आज्ञा होने पर भी सती का होना इस समय गैर कानूनन है पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस विषय पर सार्वजनिक मत में परिवर्तन हुआ है क्योंकि इसका श्रेय तो ब्रिटिश शासकों की मजबूती ही को है। उन्नति प्राप्त भारतीय राजा राम मोहनराय ने इसका समर्थन किया परन्तु अन्य प्रभावशाली बंगाली सज्जनों ने इसका घोर विरोध किया और वे पुनः इसे चालू करने के लिये प्रिवी कौंसिल तक लड़े।'

विधवा का भरणपोषण का कानूनन घर वालों पर कोई बोझ नहीं है परन्तु यदि उपरोक्त शर्तों पर वह रहे तो रह सकती है,

नहीं तो निकाल बाहर की जाती है। तब उसे दान अथवा व्यभिचार, जिसका शिकार उनमें से कम नहीं बनतीं, पर निर्भर होना पड़ता है और उनकी चिथड़ों से लिपटी हुई, सिर मुड़ा हुआ, और गन्दी मूर्ति पर जिन्हें वृद्धावस्था प्राप्त स्त्रियों से अधिक आकर्षक कहा जा सके मन्दिरों की भीड़ भाड़ और तीर्थ स्थान की गालियों में दिखाई पड़ती हैं और कभी २ मुट्ठी भर चांवलों में ही उनकी पवित्रता नष्ट हो जाती है।"

वे आगे कहती हैं--"विधवा विवाह कट्टर हिन्दुओं में असम्भव है। विवाह कोई व्यक्तिगत विषय नहीं है बल्कि चिरस्थायी पवित्र सम्बन्ध है और यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि अधिकांश हिन्दुओं में हड्डी तक कट्टरता है। चाहे विधवा अबोध अवस्था और पति से अज्ञात हो जिसकी मृत्यु उसके पापों से हुई बताई जाती है, अथवा वह बीस वर्ष की हो और पति के साथ भोजन और बिस्तर में सम्मिलित हुई हो, धर्म में दोनों का पुनर्विवाह होना निषिद्ध है। हाल में ही पाश्चात्य प्रभाव से ऐसी कुछ संस्थाएं स्थापित हुई हैं जो अक्षत योनि विधवाओं के विवाह की पक्षपाती हैं पर उनका कार्य उच्च शिक्षित लोगों तक ही परिमित है और अब भी एक शताब्दी पहले अब्बे डुबोइस का कहा हुआ यह कथन सत्य प्रमाणित होता है कि उसने देखा कि एक छोटी बालिका का विवाह एक साठ वर्ष के आदमी के साथ होता है और फिर उसकी मृत्यु पर पुनर्विवाह का निषेध होने के कारण बालिका को व्यभिचार पूर्ण जीवन की ओर धकेल दिया जाता है। यदि विधवा विवाह प्रचलित भी होता तो कम उम्र की लड़की ब्राह्मणों को पसन्द न होने के कारण विधवाओं को बहुत कम पसन्द किया जाता।"

'साथही एक मनुष्य सामाजिक परिस्थिति का जो प्रभाव नवयुवती विधवा पर पड़ता है उसे भी नहीं भूल सकता। वह अपने

बचपन में उसी उत्तेजक वायुमण्डल में रहती है जो उसके भाई को बालकपन में घेरे हुए थे। यदि एक लड़की इस प्रकार के विचारों और कामेच्छा के इतने प्रबल कर देने के पश्चात् अपनी इच्छाओं को इस प्रकार उचित रीति से सन्तुष्ट कर देने से रोक दी जाती है तो फिर यदि उसकी कामेच्छा सामाजिक व धर्म से अधिक बलवान साबित होती है तो इसमें क्या आश्चर्य है। उसके घर वाले अपनी मान रक्षा के लिये जहां तक सम्भव होगा उसे रोकेंगे परन्तु अधिकतर उसे अपने त्याग के भावों के अतिरिक्त कोई भी नहीं रोक सकता।'

'अक्षत योनि विधवाओं के पुनर्विवाह का आन्दोलन उठाने वाले एक प्रतिष्ठित बंगाली ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे जिन्होंने विधवा विवाह का क़ानून बनाने में सरकार की सहायता दी थी। उनके कार्य और उसके परिणाम पर एक दूसरे प्रतिष्ठित भारत वासी कहते हैं " मुझे स्मरण है कि इस कार्य ने कैसा आन्दोलन और हल चल पैदा करदी और किस प्रकार कट्टर हिन्दू इसके विरुद्ध खड़े हुए ;.....विधवाओं का यह वीर किस प्रकार निराशा मे ही अपने सम्वाद को अधूरा ही छोड़ कर मरा.......... सन् १८९१ से इस कार्य ने जो प्रगति प्राप्त की है वह अत्यन्त धीमी है..........हिन्दू विधवा का दुर्भाग्य अब भी वैसा ही है जैसा पचास साल पहले था। उसके आंसू पोंछने वाले और उस पर जबरन् लादे हुए वैधव्य को हटाने वाले बहुत थोड़े लोग हैं। आवेशपूर्ण कार्यकर्त्ता जो विद्यासागर के जन्म दिवस पर सार्वजनिक मञ्च पर चीखते हैं उठ खड़े हुए हैं लेकिन वास्तविक कार्य अपूर्ण पड़ा हुआ है।"

अपने आदर्श पर सच्चे रहने वाले महात्मा गान्धी कहते हैं " छोटी लड़कियों पर वैधव्य लादने के पाप का प्रायश्चित हम

हिन्दू प्रति दिन कर रहे हैं—किसी भी शास्त्र में ऐसी आज्ञा नहीं है। अपने पति के प्रेम में स्वेच्छा से वैधव्य पालन करने वाली स्त्री जीवन के महत्त्व को बढ़ाती हैं, गृह को पवित्र करती हैं और स्वयं धर्म को ऊंचा बनाती हैं। परन्तु जो वैधव्य धर्म या रिवाज द्वारा जबरदस्ती लादा जाता है वह असह्य जुआ है, घर को नष्ट करता है और धर्म को पतित करता है। क्या हिन्दू वैधव्य एक मनुष्य की नाक में उंगली नहीं करता जब कि वह देखता है कि पचास साल का एक बुड्ढा और रोगी मनुष्य ग्यारह वर्ष की लड़की को खरीद लेता है?" परन्तु यह गान्धीजी का निजी मत है समाज का नहीं। एक भारतीय राजनैतिक ने कहा "गान्धी एक बहका हुआ मनुष्य है"। विधवाओं की संख्या हाल के सरकारी विवरण से २६, ८३४, ८३८ है।'



अष्टम–प्रकरण

भारत माता

मिस मेयो ने इस अध्याय में बुराइयों का चित्रण बहुत बढ़ा चढ़ा कर किया है पर फिर भी हम चाहते कि भारतवासी उन पर ध्यान दें 'भारतीय स्त्री को परीक्षा के समय–गर्भावस्था में–जिस वस्तु की जरूरत होती है वह है दाई और दाई एक वह जीव है जिसकी निसन्देह बड़ी पूछ होती है। हिन्दू धर्म के अनुसार वे अस्पर्ष होती है और जो वस्तु भी वह छूती है भ्रष्ट हो जाती है। इसलिये वे ही दाई होती हैं जो स्वयं गन्दी और अछूत जाति का होती हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सौवड़ में स्त्री को नजर लग जाने का उतना ही डर रहता है जितना कि हाल के जन्मे बच्चे को। इसलिये कोई भी स्त्री जिसका बच्चा मर चुका हो या जिसका गर्भपात हो चुका हो भारतवर्ष के अधिकांश भाग में दाई का काम नहीं कर सकती क्योंकि कहीं डाह या द्वेष चुप चाप न लग जाय। न यह कार्य विधवा ही कर सकती है क्योंकि वह स्वयं बुराई की मूर्ति है।

इसके अतिरिक्त इस कार्य के लिये कोई शिक्षा की भी आवश्यकता नहीं समझी जाती। यह कार्य वंशानुक्रम से चला आता है। दाई के मर जाने पर उसकी बेटी या बहू चाहे तो एक दम यह कार्य उसने अपने समस्त जीवन में स्वयं गर्भ धारण न भी किया हो प्रारम्भ कर सकती है और दूसरी स्त्रियां भी अगर वे निरी बुद्ध ही न

हों तो विना किसी तय्यारी के एक दम यह पेशा शुरू कर सकती हैं। इस लिये भारतीय स्त्रियों के लिये सब से अधिक नाज़ुक भय और उनके अस्तित्व की सब से आवश्यक घड़ी में यह चुंदी, वृद्ध, लंगड़ी, लकवा मारी हुई, बीमार, गन्दी और गरीब घरानों की स्त्रियां ही एक मात्र सहायक होती हैं।

'माता बच्चे के जन्म के अवसर के लिये कोई तय्यारी नहीं करती जैसे छोटे कपड़ों का तय्यार करा लेना। यह सब देवी देवताओं की कृपा पर छोड़ दिया जाता है। उसे एक झोंपड़े अथवा एक छोटी और अंधेरी कोठरी मे बदबूदार और नमी लिये हुए चिथड़ों पर, जो घर में इस्तेमाल के बाद इकट्ठे हो गये हों, लिटा दिया जाता है।" वह इस पीड़ा के समय में अशुद्ध समझी जाती है और जो कुछ वह छूती है वह भी अशुद्ध और नष्ट करने ही के योग्य हो जाता है। इस लिये मितव्ययता के नाम पर उसे गन्दे और निकम्मे कपड़े, चाहे वे मानुपिक हों या जानवरों के लायक, दिये जाते हैं। अगर कोई स्त्री लंगड़ी हो तो टूटी हुई सूत की खाट दी जाती है और उसे दूसरी बार के लिये वहीं 'पड़े' रहने दिया जाता है अथवा कोरी जमीन पर ऊपले या पत्थर का सहारा लगा कर लिटा दिया जाता है और कोई इस जगह को बुहारने, धोने या धूल हटाने में अपनी शक्ति व्यर्थ ही व्यय नहीं करता।'

जब दर्द शुरू होने लगता है तब दाई को बुलाया जाता है। यदि दाई उस समय अच्छे कपड़े पहिने होती है तो वह ठहर कर छुतही बीमारी वाले गन्दे चिथड़े पहिन लेती है जो कि वह इस कार्य के लिये नियुक्त रखती है और जिन्हें वे कई अन्य रोगियों की सोवड़ में भी पहिन चुकी है। इस प्रकार महागन्दे

और वीसियों उड़नी बीमारियों के जन्तु लिये हुये माता के साथ अन्दर वन्द हो जाती है।'

"यदि हवा के लिये कोई छेद हो तो वह उसे गोवर और फूंस से वन्द कर देती है क्योंकि सोवड़ में स्वच्छ वायु हानिकर होती है, उससे बुखार आ जाता है। यदि पर्दा वनाने के लिये पर्याप्त चिथड़े हों तोवह उन्हें सीं लेती है और एक ओर रस्सी डाल कर दरवाजे पर लटका देती है ताकि हवा विलकुल ही न आवे और फिर अंधेरे को और भी अंधेरा वनाने के लिये एक छोटासा दीया जरा से तेल में एक डोरी का टुकड़ा डाल कर अथवा विना चिमनी वाले छोटे से लेम्प में जिसमें से तेजी से धूआं निकलता है जलाती है। इसके वाद खाट के नीचे या रोगी के पास ही वह एक वर्तन में कोयले की आग जलाती है जिससे उसकी विषाक्त हवा वहां की बुदबूदार हवा के साथ मिल जाती है। मैंने पहली जिस दाई को देखा उसने मेरी नज़र लगने से वचाने के लिये ज्योंही मैं भीतर आई त्योंही एक मुट्ठीभर दुर्गंधिपूर्ण मसाला आग पर डाल दिया। इससे भारी धूआं और लपट उठी जिसे उसके धुंधले नेत्र न देख सके और जिससे रोगी का विस्तरा जल उठा। वह वहुत कम देख सकती थी, देखने या समझने के लिये विलकुल वोड़म थी।'

'अगर वच्चा जनने में जरा भी देर हो जाती है तो दाई देर का सवव खोज निकालती है। वह अपने लम्वे, विना धुले हुए गन्दी अंगूठी और कड़ों से लदे हुये और छोटे छोटे जन्तुओं से भरे हुए हाथ को माता के अङ्ग में घुसेड़ देती है और उसके जो कुछ हाथ पड़ जाता है खींचती और मरोड़ती है। यदि वच्चे के निकलने में वहुत कठिनाई और देर होती है और यदि पति अधिक व्यय करने की आज्ञा दे देता है तब अन्य दूसरी और तीसरी दाई वुलाई

जाती हैं और अस्त व्यस्त हुए अङ्ग-एक टांग या टूटे हुए हाथ-को पकड़ कर बच्चा बाहर खींच लिया जाता है।'

एक महिला डाक्टर कहती हैं "प्रायः सिकुड़ा हुई जच्चेदानी के कारण यदि सिर बाहर नहीं निकलता तब दाई अङ्गों को चौड़ा करने का प्रयत्न करती है और अक्सर चटका देती है। वह खेंचतान करके बच्चे को बाहर निकालना ही पसन्द करती है और रोगिणी के प्रायः मूत्राशय बुरी तरह क्षत कर देती है जिसके परिणाम स्वरूप गुदा और मूत्राशय के बीच में जख्म हो जाता है। यह रोग भारतीय महिलाओं में बड़ी अधिकता से होते हैं।'

'इसमें कभी कभी तीन, चार, पांच और छः दिन तक लग जाते हैं। इस बीच में स्त्री को किसी भी प्रकार का भोजन नहीं दिया जाता'''''''शास्त्रों की आज्ञा ऐसी ही है और दाई परम्परागत बातों का पूरा ख्याल रखती है। वह अपनी मुट्ठी से रोगिणी को भली प्रकार गूंधती है। इसे दीवार के सहारे खड़ा करती है और उसका माथा उससे टकराती है। खाली जमीन पर सीधा खड़ा करती है, उसके हाथ पकड़ लेती है और अपने गन्दे नंगे पैरों से उसकी जांघों को दबाती है, यहां तक कि उसके नाखूनों से कभी मांस तक छिल जाता है अथवा वह उसे जमीन पर लेटा देती है और उसके शरीर पर डोलती है जैसे कोई आटा गूंदता हो। वह गन्दे पदार्थों जैसे नारियल की जड़ें, गन्दी रस्सी के टुकड़े या गिरी के टुकड़े और चिथड़े, अथवा लौंग और गेंदे के फूल या सुपारी और मसाले के लड्डू बनाकर गर्भाशय मे घुसेड़ देती है ताकि बच्चा जल्दी हो पड़े। देश के कुछ भागों में बछड़े के बाल, बिच्छू के डंक, बंदर की खोपड़ी और सांप की खाल अमूल्य उपचार समझे जाते हैं। इन चीजों के प्रवेश और जख्मों के कारण प्रायः मार्ग आंशिक या पूर्ण तौर से बन्द हो

जाता है। जच्चा को सोवड़ में पहिनने के लिये स्वच्छ कपड़े नहीं दिये जाते और न गर्म पानी ही दिया जाता है। ताजा गोवर, वकरी की मेंगनियां अथवा भूभल जच्चा के शरीर को ठण्डा होने के समय गर्म करने के काम में लाये जाते हैं।'

'हिन्दुओं के सवसे पवित्र स्थान काशी में भंगी''''''सव के सव जो अछूत हैं—सात श्रेणियों में वंटे हुए हैं। पहली श्रेणी मे दाई और अन्तिम और सबसे अधिक नीच श्रेणी से नाल काटने वाली होती हैं। नाल काटना इतना वुरा समझा जाता है कि केवल नीच भंगी ही उस कार्य को करते हैं। इसलिये घृणित दाई अपने साथ एक और अपने से भी अधिक घृणित ओरत को लाती है। यह कार्य वह कभी कभी वांस की छीपटी से, कभी ठिकरे से, कभी टीन के टुकड़े से या कभी कांच के टुकड़े से करती है। कभी उसके पास कोइ चीज भी न होने पर वह पड़ोसी से चाकू मांग लाती है और मैं इस आवाज़ को जो प्रायः सुनाई पड़ती है नहीं भूल सकती "वहां भीतर पड़ा है पर जल्दी वापिस कर जाना क्योंकि खाने के लिये मुझे उससे साग वंदारना है" कटे हुए नाल का सिरा यों ही छोड़ दिया जाता है और अगर कुछ किया भी जाता है तो उससे एक मुट्ठी मट्टी या कोयला या गोवर और अन्य कोई मिश्रण रगड़ दिया जाता है। बंगाल के हेल्थ-आफिसर की रिपोर्ट है कि साधारणतया वंगाल में पैदा हुए आधे बच्चे आठ वर्ष की अवस्था तक मर जाते हैं और कुल एक चौथाई ही चालीस वर्ष की उम्र तक पहुंचते हैं। इतनी अधिक वाल मृत्यु का ५० फीसदी कारण जन्म की दुर्वलता है।

'जैसे ही कि वच्चा पैदा होता है उसे खुली जमीन पर विना लपेटे हुए, जब तक कि दाई को फ़ुरसत न हो, पटक दिया जाता है। अगर लड़की पैदा हुई तो बहुत प्राचीन समय से ऐसे

नियम चले आते हैं जिनसे उसे वहीं खतम किया जा सकता है। बच्चे को खिलाने के भिन्न २ तरीके हैं, मध्यप्रदेश में पहिले ही पहल उस बच्चे के पेशाब ही में गुड़ घोल कर पिलाया जाता है, देहली में खांड़ या मशाला, मद्य या शहद मिल जाता है। जच्चा के लिये साधारणतयाः चार से सात दिन तक कुछ नहीं मिलता और अगर कुछ मिलता भी है तो वह कुछ थोड़े से सूखे छुआरे और बादाम। इसका कारण मितव्ययता मालूम होता है कि घर के बर्त्तन अशुद्ध होने से बच जांय।'

'कुछ जातियों में बच्चे को तीन दिन तक छाती का दूध नहीं पिलाया जाता जो भयानक है लेकिन कुछ में माता को न केवल नये बच्चे बल्कि उसके बड़े बच्चों को—कभी कभी तीन वर्ष तक के बच्चों को—भी दूध पिलाना पड़ता है।'

'प्रथम उनकी निर्बल वंशानुगत रोग, द्वितीय रूखा सूखा भोजन और तीसरे स्वयं अपने बालविवाह और बचपन में ही विषय भोगों के कारण उनका गर्भाशय या तो छोटी हड्डियों का बना हुआ या कुडोल होता है और इस लिये अधिकतर प्रसव के समय चीड़ फाड़ की आवश्यकता होती है।

'श्रीनगर के अस्पताल की महिला डाक्टर के० ओ० वौघन कहती हैं "एक धनी हिन्दू जो उच्चतम शिक्षा प्राप्त विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट और प्रोफेसर अपने घर पर हमें बुलाते हैं क्योंकि उनकी स्त्री ने बच्चा जना है और उसे बुखार आ गया है। मैंने देखा कि दाई के पास कोई Disinfectant नहीं था क्योंकि उसमें करीब तीन रुपये खर्च होते हैं और उसे कुल महनत का एक रुपया और कुछ मैले कपड़े ही मिलते हैं। रोगिणी पुराने उतरन कपड़े, एक पुरानी वास्कट, एक रेलवे के तिरपाल का टुकड़ा, एक पारसल से उतरा हुआ चिथड़ा और करीब आधे दर्जन पति की गन्दी और

मैली कमीजों पर लेटी हुई है। वहां किसी भी तरह का कोई स्वच्छ कपड़ा नहीं है क्योंकि मुझसे पति कहते हैं "हम साफ कपड़े पांचवे दिन देंगे लेकिन अभी नहीं क्योंकि हमारे यहां ऐसी ही रिवाज है। यह स्त्री हमारे प्रत्येक प्रयत्न करने पर भी छूत के एक रोग से मर गई जो कि साबुन, गर्मपानी या ब्रुश के अभाव से गन्दे कपड़े या दाई से लग गया था।'

मिस मेयो कहती है कि बड़े २ शिक्षित और अच्छे घर के लोग जिन्होंने विलायत से डिगरियां ली हैं और भ्रमण किया है वे भी अपनी स्त्री को इस अन्धपरम्परा में डाल रखते हैं। पी० एच० डी० और एम० डी० डिग्री प्राप्त जो कि दाइयों को वर्त्तमान ढंग पर प्रसव कर्म सिखलाने की संस्था के अध्यक्ष हैं उन्होंने घर की बढ़ी बूढ़ी औरतों के जोर डालने पर पुराने ढंग की अशिक्षित और अनभिज्ञ दाई को बुला लिया और इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी पत्नी ज्वर से मर गई और बच्चा जन्मते ही मर गया।

एक ईसाई भारतीय महिला ने एक बालिका रानी के विषय में निम्न कहानी सुनाई कि मैंने जब कमरे के अन्दर प्रवेश किया तब एक छोटी बालिका जो एक राजा की पत्नी थी और जिसकी अवस्था अभी दस वर्ष की ही हुई थी प्रसव वेदना से पीड़ित थी। दाई अपने काम में लगी हुई थी पर मामला टेढ़ा था इसलिये स्याने को बुलाने की ज़रूरत पड़ गई थी। चौखट पर वह वृद्ध जोर से एक किताब में से मन्त्र पढ़ रहा था। "ठहरो! वहां!" यकायक वह बुड्ढा चिल्लाया "अब इस स्त्री के शरीर पर आग जलाने का समय है। जल्दी! उसके शरीर पर आग जलाओ" और दाई तुरन्त ही आज्ञा पालन के लिये तय्यार हुई। आगान्तुक ईसाई महिला ने पूछा "आग से हमारी छोटी रानी की क्या दशा होगी?"

स्त्रियों ने वेपरवाही से जवाव दिया "अगर उसकी किस्मत में जिन्दा रहना वदा होगा तो वह जिन्दा रहेगी पर निरसन्देह एक वड़ा छाले का घाव पड़ जायगा और अगर उसकी आ ही गई है तो मर जायगी" और वे यह कह कर आग जलाने चली गईं।

इस पर उस चतुर महिला ने कहा "क्या आप लोगों को दैवी कोप का भय नहीं है? आप अभी अग्नि-संस्कार करने वाली हैं परन्तु यह रानी हैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। क्या अगर गंगा माता इसे देखेंगी और क्रुद्ध न होंगी कि उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं की गई?" वुड्ढे ने ऊपर देखा और कहा 'हां! यह ठीक है कि देवताओं में वड़ा द्वेष होता है और वे वड़ी जल्दी नाराज हो जाते हैं परन्तु किताव यहां निस्सन्देह कहती है.......' इसके वाद उसकी आंखें जांघों पर रक्खी हुई किताव मे लग गईं। इस वीच में महिला ने कहा "सुनो मेरे सर पर देवता का प्रभाव है और वह वोल रहे हैं कि गंगा के पवित्र जल को तीन वार आग पर औटाओ और फिर उसे अद्भुत थैली में जो देवता मेरे हाथों भेजेंगे उसे भर कर महारानी के शरीर पर रक्खो। इस प्रकार जल और अग्नि की सम्मिलित भेंट से देवता सन्तुष्ट हो जांयगे और उनका क्रोध शान्त हो जायगा।" वृद्ध ने चिल्ला कर कहा "हां! यह ठीक है और ऐसा ही हो" इसके वाद वह महिला दौड़ी गई और गर्म पानी की थैली ले आई।

सव ही श्रेणी के भारतवासियों में अन्धविश्वास की वहुत अधिकता है और स्त्रियों के विचार में प्रत्येक वीमारी किसी देवता के कोप का कारण है। औषधि और उपचार से देवता नाराज हो जाते हैं इसलिये मन्त्र और वलि द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अनगिनती भूत, प्रेत और चुड़ैल हैं। सव से भयानक चुड़ैल वह है जो सोवड़ में वच्चा होने से पहले ही मर गई हो। इनके पैर उलटी तरफ होते हैं, सूनसान सड़कों और

मकानों में रहती हैं और बड़ी ईर्ष्या वाली होती हैं। इसलिये जब कोई स्त्री सोवड़ में बच्चा पैदा होने से पहिले ही अन्तिम घड़ियां गिनने लगती है तब दाई कुटुम्ब की रक्षा के लिये बड़ी मिहनत करती है। पहले वह मिर्च लाकर मरने वाली की आंखों में मलती है ताकि उसका जीव अन्धा हो जाय और उसे बाहर निकलने का मार्ग दिखलाई न दे। इसके बाद वह दो बड़ी कीलों से उसके हाथ जमीन पर रख कर हथेली में ठोक देती है ताकि उसकी आत्मा जमीन में रह जाय और वह उठ कर जीवित आदमियों को तंग न करे। इस प्रकार वह अपने पूर्व जन्म के पापों के लिये देवताओं से क्षमा मांगती हुई दयाजनक स्थिति में मर जाती है। इसमें दाई का ही एक मात्र दोष नहीं है उसे परम्परागत रीति रिवाजों के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है अगर वह ऐसा न करे तो घर की बुढ्ढी औरतें उसे न बुलावें। (कैसी मिथ्या कल्पना है। मिस मेयो हिन्दू जीवन को पतित से पतित साबित करने के आवेश में यह बिलकुल भूल जाती हैं कि ऐसा कोई भी अपराध कानूनन दण्डनीय है और देश के किसी भाग में भी ऐसा बीभत्स कार्य सम्भव नहीं है।)



नवम–प्रकरण



बुर्के के अन्दर

(मिस मेयो ने इस प्रकरण में अपने देशवासियों को वतलाय है कि भारतवासी इतने पतित हैं कि वे अपने देश की स्त्रियों क पर्दे में वन्द रखते हैं और मौत से पहले वाहर निकलने नहीं देते उन्होंने इस वात को छिपा लिया है कि देश के अधिक भाग में पर्दा विलकुल नहीं है। पंजाव, वंगाल और युक्त प्रान्त में केवल ऊंची जाति की स्त्रियां ही पर्दा मानती हैं और इसको हटाने के लिये भी देश में घोर आन्दोलन हो रहा है) वे कहती हैं—

'स्त्रियों की लूट खसोट ही पर्दे के चलने का कारण है और आज भी कुछ वैसी ही स्थिति मौजूद है। भारतीय और अंगरेज स्त्रियों की एक सम्मिलित गायन समिति में उच्च हिन्दू महिलाओं ने प्रार्थना की कि सदस्य होने की कम से कम आयु वारह या ग्यारह वर्ष कर दी जाय क्योंकि वे उस आयु की लड़कियों को घर पर घर के आदमियों की कुदृष्टि के कारण नहीं छोड़ सकतीं। यही भय गांवों में किसानों की स्त्रियों में पाया जाता है जो अपने घर पर लड़की को एक घंटे भी नहीं छोड़ना चाहतीं क्योंकि उन्हें निश्चय है कि ऐसा करने से वे नष्ट कर दी जयांगी।' (मिस मेयो ने भारतीय पुरुषों पर कैसा झूंठा और वीभत्स आक्षेप किया है। वे कृपा कर वतलावें कि यह दृश्य भारतवर्ष का है या आचरण-शून्य अमरीका और योरप का जहां चाचा और भतीजियों का सम्वन्ध ज़ायज़ समझा जाता है।)

'कोई भी साधारण मुसलमान जनाने में दूसरे आदमी का विश्वास केवल इस लिये नहीं करेगा कि कहीं उसे कोई अवसर न मिल जाय। इसके विपरीत अगर कुछ थोड़े से हिन्दू पाश्चात्य प्रभाव से ऐसा नहीं करते परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्हें अपने साथियों में अविश्वास की कमी हो गई है। स्त्री पुरुषों का पवित्र और स्वतन्त्र भावों से मिलना भारतीय मस्तिष्क के बाहर की बात है।'

'अनेक भागों में इसीलिये हिन्दू स्त्रियां जनाने की चार दिवारियों में बन्द करदी जाती हैं और मुसलमान स्त्रियां अगर चार दिवारियों से निकलती भी हैं तो बुर्के के अन्दर और पर्देदार सवारियों में। हिन्दू राजा की स्त्री एक राल्स-रायस मोटर में बैठ कर निकलती है, उसमें गहरे रंग के कांच के शीशे लगे होते हैं जिससे वह तो देख सकती है पर उसे कोई नहीं देख सकता। पर अगर मुसलमान बवर्ची की औरत निकलेगी तो एक मोटे कपड़े के बुर्के को डालकर जिसमें देखने के लिये तीन इंच की जाली की आंखें लगी रहती हैं।

'मैं एक बार देहली में एक 'पर्दा भोज' में गई, पर्दा भोज इस लिये क्योंकि वह पर्दे वाली स्त्रियों के लिये ही था। पर्देदार मोटरों में बड़े बड़े घरों की स्त्रियां आईं और अंगरेज महिला ने जो एक उच्च कर्मचारी की पत्नी थीं और जिन्होंने निमन्त्रण दिया था सबका स्वागत किया। आदमी, नौकर सब भगा दिये गये, केवल स्त्रियां रह गईं और आगत महिलाएं पर्दा दूर करके आराम से बैठ गईं। चाय के बाद भोजन प्रारम्भ हुआ कि इतने में ही यकायक धम चौकड़ी, औरतों की चिल्लाहट, पुरुषों की चिल्लाहट, भगदड़ सुनाई दी। कमरे के अन्दर भय छा गया। कांपती हुई हिन्दू महिलाएं कोने में पीठ करके बैठ गईं और अंगरेज महिलाएं अपनी अपनी शक्ति पर विश्वास करती हुई स्थिति का सामना

करने के लिये तय्यार हो गईं। इस बीच में बरामदे में उपद्रव बढ़ गया और फिर धीरे २ सब शान्ति हो गया। पीछे मालुम हुआ कि वहां झाड़ियों में कोई जानवर था।

इसके बाद बातचीत में एक भारतीय महिला ने कहा "तुम हमारा पर्दा पसन्द नहीं करतीं परन्तु हम दूसरा कुछ जानती ही नहीं। हम एक शान्तिपूर्ण, रक्षित जीवन अपने गृह के अन्दर व्यतीत करती हैं और यदि हमें अपने पुरुषों के साथ घूमना पड़े तो हम दुखी और भयभीत हो जायं।" परन्तु एक महिला ने जो अपने पति के साथ विलायत हो आई थी कहा कि "मैं जब वहां गई थी तो मैंने पर्दा उतार दिया था फिर मैं बाजारों में जाती थी, आदमियों से बातचीत करती थी और वहां सब मुझे मान की दृष्टि से देखते थे। वह सब मुझे बड़ा अच्छा मालूम देता था परन्तु यहां हमें दिन भर दीवारों में एक दूसरे से लड़ते हुए और अज्ञान में जीवन व्यतीत करना पड़ता है।"

'पर्दे का एक प्रतिफल है' क्षय रोग। डाक्टर आर्थर लेन्केस्टर ने दिखलाया है कि पर्दा रखने वाली जातियों में अन्य जातियों से अधिक स्त्रियां क्षयरोग से मरती हैं। साथ ही यह भी दिखाया है कि घर में बन्द रहने वाली स्त्रियों के पुरुष भी घर में कम बन्द रहने वाली स्त्रियों के पुरुषों से अधिक मरते हैं। कलकत्ता के हैल्थ आफिसर कहते हैं कि "शहर की मृत्यु-संख्या में कमी होने पर भी पुरुषों से स्त्रियों की ४० फीसदी मृत्यु-संख्या अधिक है। जब तक यह न समझ लिया जाय कि ऐसे बड़े नगर में केवल बड़े घर की स्त्रियों को छोड़कर जो बड़े मकानों में रहती हैं साधारण स्त्रियों के लिये पर्दा करने से स्त्रियों की एक बड़ी संख्या की अकाल मृत्यु हो जाती है तब तक इस मृत्यु-संख्या का कम होना असम्भव है। लन्दन की स्वास्थ्यरक्षा और देसी दवाइयों के विद्यालय के डाइरेक्टर डाक्टर एन्ड्रयू बल-

फोर का कहना है कि भारतीय सम्मलित कुटुम्ब में पर्दे के कारण स्त्रियों को मकान के सब से गन्दे और अंधेरे भाग में रखने, बाल-विवाह. जिससे हज़ारों नवयुवक शक्ति क्षीण हो रहे हैं और थूकने की गन्दी आदतें, बिमारियों को फैलाने में सहायक होती हैं। अस्वच्छता, हवा और व्यायाम की कमी के कारण भारतवर्ष में नौ या दस लाख आदमी प्रतिवर्ष तपेदिक के रोग में मर जाते हैं।'

हिसाब लगाया गया है कि ४ करोड़ हिन्दू और मुसलमान स्त्रियां परदे मे रहती हैं और ऐसी स्त्रियां जो विवाह के बाद मृत्यु तक बाहर निकल कर कभी संसार को नहीं देखतीं उनकी सख्या ११,२५०,००० और १७, २९०,००० के बीच में है। इस जगह एक कन्या पाठशाला की अंगरेज़ शिक्षका का अनुभव उद्धृत करना उचित होगा "वे (लड़कियां) व्यायाम करना नापसन्द करती हैं और अनिवार्य होने पर ही करती हैं। वे स्वच्छ हवा में नहीं जाना चाहतीं। बहुधा लड़कियां बहुत कमजोर होती हैं। उन्हे अच्छे भोजन और व्यायाम की आवश्यकता है। उनकी छातियां प्रायः सिकुड़ी हुई और रीढ़ झुकी हुई होती है। उन्हें खेलने की कोई इच्छा नहीं होती.......हम चाहते हैं कि अधिकारी उन उपायों का जो कि उनके बढ़ने में सहायक हों अनिवार्य करदें। परन्तु भारतीय लड़कियों के खोखले शरीर में जीवन डालना स्वप्न मात्र है। प्राचीन भारत उसे स्वीकार नहीं करेगा। उसे उसका विवाह एक थोड़े से घरों में ही करना है और वहां सदैव किसी बुड्ढी औरत के कहने का अवसर रहता है "इस लड़की को सर्व साधारण में पैर उछालना सिखाया गया है। निस्सन्देह ऐसा निर्लज्ज हमारे गृह मे लाने योग्य नहीं है" ऐसा केवल कट्टर भारतवासियों में ही होता है पर यहां कट्टर लोग ही अधिकांश संख्या में हैं।"

दसवां-प्रकरण

अविवाहित लड़कियां

अंगरेजी भारतवर्ष में दो प्रति शत से भी कम स्त्रियां शिक्षित हैं जो कि छोटी मोटी चिट्ठी लिख सकती हैं और उसका जवाब पढ़ सकती हैं। सन् १९२१ में ऐसी शिक्षित स्त्रियों की संख्या अठारह प्रति सहस्त्र थी पर सन् १९११ में यह संख्या केवल दस प्रति सहस्त्र ही थी।

मुझे स्मरण है कि मेरे परिचित एक धनी नवयुवक ने जो कि इंगलैण्ड के विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त करके लौटा ही था बड़ी उग्रता से कहा कि मैं कभी भारतीय स्त्री से विवाह नहीं करूंगा क्योंकि वह 'दसवीं सदी की पत्नी' से अपने को बांधना नहीं चाहता। यही कारण है पाश्चात्य सभ्यता-प्राप्त भारतीय शिक्षित स्त्री से विवाह करने के लिये कभी २ छोटे घर की स्त्री से भी विवाह कर लेते हैं। बम्बई स्त्री-शिक्षा में अन्य प्रान्तों से बढ़ा हुआ है तब भी उसकी रिपोर्ट बतलाती है "शिक्षित पति शिक्षित पत्नी से विवाह करना चाहता है और अपनी लड़की को उसी दृष्टि से पढ़ाता है परन्तु यदि लड़की उससे आगे पढ़ना चाहती है जिससे विवाह में बाधा हो या देर हो तो वह उसे पाठशाला से उठा लेता है" और आसाम की रिपोर्ट बतलाती है कि " माता पिता अपनी लड़की को पाठशाला में इस लिये भेजते हैं ताकि वे उनका विवाह अच्छे वर के साथ कर सकें तथा सम्भवतया कम व्यय में। परन्तु जैसे ही ठीक वर मिल जाता है

लड़की कड़े पर्दे में बन्द कर दी जाती है' इसके अतिरिक्त विवाह में भी एक खासी रकम चाहिये। यह व्यय कभी २ इतना अधिक हो जाता है कि वह कर्ज में फंस जाता है। तव फिर वह उसे शिक्षा देने के लिये और भी अधिक व्यय क्यों करे या यदि निर्धन है तो उसकी मजदूरी से लाभ क्यों न उठाए विशेष कर जव कि वह जानता है कि वह सदा के लिये दूसरे घर में चली जायगी। जैसा कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के सदस्य राय हरिनाथ घोस वहादुर ने कहा है "लोग स्वभावतः लड़कों को ही पढ़ाना पसन्द करते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि वे उन्हें उनकी वृद्धावस्था में आराम और सुख पहुंचावेंगे लेकिन लड़कियां तो विवाह होने के पश्चात् दूसरों के घर चली जायंगी।"

अव विवाह के पश्चात् शिक्षा का प्रश्न रह जाता है। भारतवासियों की वर्त्तमान स्थिति में यह असम्भव है। जैसे ही कि छोटी सी पत्नी अपने पति के गृह में आती है उस पर अपने पति, अपनी सास और घर की देवी देवताओं की सेवा का वोझ उसके सिर पर आ पड़ता है। शीघ्र ही गर्भ सवार हो जाता है और फिर उसमें अन्य कार्यों के लिये कठिनाई से ही शक्ति वच रहती है। इस पर यदि वह पढ़े भी तो स्त्रियों द्वारा ही पढ़ सकती है। स्त्री-शिक्षकों के पैदा करने में भी यही अड़चनें हैं और जो कुछ थोड़ी वहुत हैं भी वे वर्त्तमान कन्या पाठशालाओं के लिये भी कठिनता से पर्याप्त है।

इन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के वाद क्या उन्होंने जो वहाँ सीखा है उसे वड़े होने पर व्यवहार में ला सकेंगी? उन्हें क्रान्तिकारी स्थिति का सामना करना पड़ेगा—पुराने अटल विचारों की स्त्रियों से भरा हुआ घर! यह निर्वल वालक अपने मानसिक स्थिति को अपरिवर्तनशील, पुराने और धुंधले वाता-

चरण में स्थिर रख सकेंगे? सम्भावना यह है कि उनमें इतने भाव तो बच रहेंगे कि वे अपनी पुत्रियों को पाठशाला में भेजें और धीरे २ शिक्षित होती चली जांय।

मि० बी० मुकर्जी के शब्दों में "सामाजिक प्रणाली जिसके कारण बारह वर्ष या ऐसी ही अवस्था में लड़कियों का विवाह होना अनिवार्य हो जाता है वही उस अवस्था से आगे शिक्षा देने की आशा का भी अन्त कर देती है।" प्राय: ७२ प्रति शत लड़कियां अक्षर ज्ञान पूर्ण होने से पहले ही उठाली जाती हैं और उनमें से केवल एक प्रति शत आरम्भिक शिक्षा से आगे पढ़ती हैं।"

जो कुछ भी शिक्षा में उन्नति हो सकती है वह केवल अंगरेजी सरकार, अंगरेज और अमरीका निवासी पादरियों और कुछ प्रगति-शील विचार वान और उसे कार्य में परणित करने वाले भारतीयों के कारण ही हुई है परन्तु जब तक भारतवासियों के मस्तिष्क में स्वयं क्रान्ति न हो तब तक इस प्रगति के विरोध और काहिली से युद्ध करने के लिये कम से कम ९५ वर्ष चाहिये जब कुल संख्या की १२ प्रतिशत लड़कियों को प्रारम्भिक शिक्षा दी जा सकेगी।

सन् १९२१-२२ में ब्रिटिश भारत में २३,७७८ बड़ी और छोटी कन्या पाठशालाएं और विद्यालय थे जिनमें प्रारम्भिक स्कूल से उच्च विद्यालय भी सम्मलित हैं। इनमें प्रारम्भिक श्रेणी १२९७६४३, मिडिल स्कूल में २४५५५ और उच्च विद्यालयों में केवल ५८१८ छात्राएं हैं।" रिपोर्ट में बतलाया है हालांकि १५,०००,०० पाठशाला जाने लायक लड़कियों में से तमाम भारतवर्ष में ३०,००० लड़कियां पढ़ने जाती है पर यह भी १९१७ की संख्या से ३० प्रतिशत अधिक है। बम्बई प्रान्त में सन् १९२४-२५ में केवल स्त्रियों की कुल संख्या में २.१४ प्रतिशत लड़कियों को शिक्षा मिलती थी पर सारे भारतवर्ष में सन् १९११ में स्त्रियों की कुल

संख्या मे हिन्दुओं में .९ और मुसलमानों में १.४ प्रतिशत लड़कियों को शिक्षा मिलती थी। पुरानी दाई और पर्दे की प्रथा की भांति घर की बड़ी बूढ़ी औरतों से ही स्त्री शिक्षा के विरोधियों को भी पर्याप्त सहायता मिलती है। 'स्वर्ग के देवताओं' और 'पृथ्वी के देवताओं' के आदेश का पालन करने के लिये वे अपनी कन्याओं को अपनी ही भांति अपढ़ रखने के लिये मर मिटेंगी। वृद्ध सिक्ख कप्तान हीरासिंह बरार ने बड़ी व्यवस्थापक सभा हे बोलते हुए कहा 'इतने लाला और पंडित व्याख्यान मञ्च पर चढ़ कर कहते हैं' "अब इस या उस सुधार का समय आगया है" परन्तु फिर होता क्या है। जब वे घर जाते हैं और दूसरे दिन हम उनसे मिलते हैं तो वे कहते हैं "हम क्या कर सकते हैं? हम निःसहाय हैं जब हम घर गये तब मालूम हुआ कि हम जो कुछ करना चाहते हैं, हमारी स्त्रियां हमें नहीं करने देंगी। वे कहते हैं हम इस बात की परवाह नहीं करतीं कि हम क्या करते हैं लेकिन हमें वे उसके अनुसार काम नहीं करने देंगी।"



ग्यारहवां—प्रकरण



ब्राह्मण

मैं धड़धड़ाती रेल में बैठ कर बंगाल से मद्रास पहुंची। [प]र्वत श्रेणियां, फिर नारंगी रंग की समतल भूमि, जहां छोटे [औ]र प्रायः काले घुंघराले बालों वाले आदमी वही हज़ार वर्ष [प]ुराने ढङ्ग से पानी खींच रहे हैं या नाज पर बैलो की रोंद चला रहे हैं, मट्टी के छोटे गांव जिनमें मट्टी के घर बने हुए हैं और उन पर फूंस का छप्पर पड़ा है।

मद्रास ब्राह्मणों का गढ़ है, यह प्राचीन निवासी काले द्राविड़ों का गढ़ भी है जिन्हें आर्यों ने पराजित करके कुचला और लाखों को अछूत, अज्ञान और निर्धन बना डाला। इसके बाद अंगरेज आये और उन्होंने शान्ति स्थापित करते हुये यथासम्भव समानता के भाव फैलाये। धीरे २ द्राविड़ों ने अपनी आंखें खोलीं और फिर बड़ी कायरतापूर्वक माथा ऊपर उठाया। क्रमशः अन्य नीची जातियों के साथ मिल कर इनका शक्तिशाली अब्राह्मण दल बन गया जिसका मद्रास व्यवस्थापक सभा मे बहुमत है। मैंने एक तेज और चटपटे अब्राह्मण सज्जन से ब्राह्मणों का चित्र खींचने के लिये कहा तब उसने इन शब्दों में उत्तर दिय "एक समय जब कि सब आदमी अपनी २ मर्ज़ी मुताबिक रहते थे उस समय केवल ब्राह्मणों ने ही अपने को शिक्षा की ओर लगाया। 'विद्वान् और प्रखर-बुद्धि' होने के कारण उन्होंने सब धार्मिक पुस्तकों पर अधिकार कर लिया और चुपचाप

ऐसे २ श्लोक लिख दिये जिसमें सब के ऊपर ब्राह्मणों का महत्त्व छा गया और अन्य लोग अज्ञान के कारण उन्हें 'सांसारिक देवता' समझने लगे और आज्ञा मानने लगे। हिन्दू राज्य में किसी को उनके विरुद्ध कहने का तनिक भी साहस नहीं था तब तक जब तक अंगरेज नहीं आये और उन्होंने सब में शिक्षा का प्रचार नहीं किया।

इस प्रान्त मे हम ब्राह्मणों से लड़ रहे हैं पर वे बड़े शक्तिशाली हैं। उनके पास समाचार पत्र हैं, न्यायालय में उनका प्रभाव है, सरकारी नौकरियों मे ८० प्रति शत उन्हीं के पास हैं और उन्होंने लोगों को अधिकतर स्त्रियों को भयभीत कर रक्खा है क्योंकि उनमें विशेष कर अज्ञान और अन्धविश्वास है। 'सांसारिक देवताओं' ने इसे भांप लिया है। वह देशभक्ति की चिल्लाहट बहुत मचाते हैं कि अंगरेज भाग जांय और हम जानते हैं कि वे अब अगर चले जायं तो फिर वे हमें घोंट डालें और देश फिर उसी दशा मे आ जाय जिसमें पहले था।

भारतवर्ष में प्रत्येक हिन्दू को जितना सरकार को देना पड़ता है उससे कई गुना ब्राह्मणों को देना पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे ब्राह्मणों का पेट भरना पड़ता है। बच्चा पैदा होने के समय ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जानी चाहिये नहीं तो उसकी उन्नति नहीं होगी। सोलह दिन के बाद अपवित्रता को दूर करने के लिये फिर ब्राह्मण को दक्षिणा दी जानी चाहिये। नाम संस्करण, बाल लेने के समय, छठे महीने खीर चटाने के समय, जब बच्चा चलने लग जाय उस समय, वर्ष गांठ, शिक्षा प्रारम्भ कराने पर ब्राह्मण को दक्षिणा देनी पड़ती है।

इसके बाद लड़की की जब पहली, सातवीं, अथवा नवीं वर्ष-गांठ होती है अथवा लड़का जिसका विवाह बारह अथवा सोलह वर्ष

तक किसी अवस्था में होता है तब ब्राह्मण को भारी माल मिलना चाहिये। इसके बाद आठवां पर ब्राह्मण को दक्षिणा दी जाय, ग्रहण पर दिया जाय, यहां तक कि जब आदमी मर जाता है तब उसकी मोक्ष के लिये ब्राह्मण को देना आवश्यक है और तेरही में बहुत से ब्राह्मणों को भोज देना पड़ता है। इसके बाद प्रत्येक वर्ष पितृपक्ष में ब्राह्मण भोजन कराने चाहिये क्योंकि उन्हें जो कुछ दिया जाता है वह पितृों के पास पहुंच जाता है। ब्राह्मणों ने इन सब रिवाजों पर ईश्वर प्रदत्त धार्मिक अधिकार प्राप्त कर लिया है और जो ऐसा नहीं करता है वह नर्क में पड़ता है। हर संस्कार के पहले हमें ब्राह्मणों के चरण धोकर चरणामृत लेना चाहिये। इस प्रान्त में ब्राह्मणों की संख्या १५ लाख है और हम चार करोड़ दस लाख लोगों को उनका पेट भरना पड़ता है।"



बारहवां—प्रकरण



मनुष्यत्व से नीचे

"इतने वर्ष के अंगरेजी राज्य के बाद भी हममें से ९२ प्रतिशत अब तक अशिक्षित क्यों है ?" भारतीय राजनीतिज्ञ अंगरेज सरकार पर दोष लगाते हैं पर वे यह नहीं बतलाते कि २४७,०००,००० निवासियों में से २५ प्रतिशत अर्थात् ७०,०००,००० अछूत बहुत प्राचीन समय से भारतवासियों द्वारा अशिक्षा और अर्द्ध मनुष्यत्व में डाल रक्खे गये हैं। भारतीय मस्तिष्क में दूसरे आदमी और राष्ट्रों पर 'जाति विद्वेष' का दोषारोपण करने की योग्यता तो है पर वह यह नहीं देखता है कि स्वयं उसके देश में ६ करोड़ ऐसे मनुष्य हैं जिन्हे मानसिक अधिकार देने का वह घोर विरोध करता है। भारतीय राजनीतिज्ञ ब्रिटिश पार्लियामेण्ट को यह दोष देते हैं कि वह दक्षिण अफ्रीका की यूनीयन सरकार को भारतीय प्रवासियों के साथ अच्छा व्यवहार करने के लिये नहीं दवाती पर यह देखना आवश्यक है कि इन १३०,००० भारतीय प्रवासियों में से एक तिहाई अछूत हैं और उनकी भारतवर्ष में ही क्या दशा है ?

यह कहा जाता है कि गोरे आर्य जब भारतवर्ष में आये तो काले द्राविड़ों से अपने रक्त की रक्षा करने के लिये उन्होंने मूल निवासियों को जिन्होंने दक्षिण का बड़ा मन्दिर बनवाया था 'अछूत' घोषित कर दिया। इसके बाद व्यवस्था बनाने वाले लोगों ने वर्ण व्यवस्था बनाते समय अपने को 'ब्राह्मण देवता' के नाम से

सर्वोच्च मान लिया। इसके नीचे उन्होंने युद्ध करने वाले क्षत्रियों को स्थान दिया, उसके वाद व्यापार करने वाले वैश्यों और अन्त में शूद्र जिनका कार्य तीनों जातियों की सेवा करना था, रक्खा। यही जातियां अव सहस्रों अन्य उपजातियों में वंट गई हैं और उन पर हिन्दू समाज का ढांचा वनाया गया है। इन सव के नीचे पूर्व जन्म के फलों को भोगने के लिये अछूत सदा के लिये पिसने को छोड़ दिये गये हैं।

भागवत में ब्रह्महत्या का दण्ड लिखा है "जो इस पाप का अपराधी है उसे मृत्यु के पश्चात् नाली का कीड़ा वनना पड़ेगा। वहुत दिनों के वाद अछूत जाति में उत्पन्न होगा और गाय के शरीर मे जितने वाल हैं उससे चौगुने वर्ष अन्धा वनना पड़ेगा परन्तु निःसन्देह अपने पाप का प्रायश्चित्त चालीस हजार ब्राह्मणों को भोजन कराके कर सकता है।" परन्तु यदि ब्राह्मण किसी शूद्र को मार डाले तो एक सौ वार गायत्री का पाठ कर लेना ही पर्याप्त है।

प्राचीन जड़ता को छोड़कर सन् १९२६ में भी अछूतों के लि हिन्दू धर्म में निम्न कार्यक्रम है—"उन्हे अर्द्ध-मनुष्य समझते हु उनके लिये सव से नीच नाम रक्खा जाता है, अपमान उन नाम पर ही लगा हुआ है। कुछ लोग भंगी और पाखाने साफ करने का ही काम करते हैं और घृणित कहे जाते हैं। उन किसी तरह की भी शिक्षा देना पूर्णतया वर्जित है। वे हिन्दू-धर्म-शास्त्रों को न छू ही सकते हैं न पढ़ ही सकते हैं। कोई भी ब्राह्मण पुजारी उन्हें दीक्षित नहीं करता और थोड़ी सी जगहों के अतिरिक्त उन्हें मंदिर में प्रवेश करने अथवा प्रार्थना करने की आज्ञा नहीं है। उनके वच्चों को पाठशालाओं में आने का निषेध है। उन्हें जहां पानी की कमी हो वहां भी कुओं से पानी लेने की आज्ञा नहीं है। उन्हें

न्यायालय, अस्पताल या धर्मशाला में जाने की आज्ञा नहीं है। कुछ प्रान्तों में वे सड़कों पर भी नहीं चल सकते न दुकानों पर ही जा सकते हैं, उन्हें अपनी आवश्यकताओं के लिये बीच के लोगों पर अवलम्बित रहना पड़ता है। उन मे से जो अत्यन्त पतित हैं, उन्हे कोई काम करने नहीं दिया जाता है और उन्हें केवल भिक्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भिक्षा मांगने के लिये भी वे सड़क पर आने का साहस नहीं कर सकते लेकिन वे छिपे २ दूर से आर्तनाद करते हैं। भिक्षा देने वाला जमीनपर कुछ फेंक देता है और जब वह दृष्टि से ओझल हो जाता है और सड़क सून-सान हो जाती है तब वह निकल कर उठा लेता है और फिर भाग कर छिप जाता है। इनमें से कुछ की परछांई अगर भोजन पर पड़ जाती है तो वह उच्च जाति वाले के काम का नहीं रहता।

इसके बाद नीच मनुष्यों का एक नियमित दूरी से निकट आ जाना भी अपवित्रता समझा जाता है। इनमें से अगर कोई सड़क पर चलना चाहे तो उसे फासला नाप कर चलना चाहिये। यदि वह दो सौ गज के भीतर होता है तो वह एक पत्ती जमीन पर रख कर उस पर एक मुट्ठी धूल डाल देता है, जिसका तात्पर्य यह है कि वह अपवित्रता की सीमा में है। इस चिन्ह को देखकर ब्राह्मण रुक जाता है और चिल्लाता है। इस पर वह विचारा अछूत भागता है और फिर आवाज देता है "मैं अब दो सौ गज दूर हूं, आप चले जाइये।" मालावार के पुलिया लोगों को अपने लिये झोंपड़ियां बनाने की आज्ञा नहीं है। वे या तो लकड़ियों पर छाये हुये पत्तों के नीचे रह सकते हैं या पेड़ों के खोखलों में। डुबोईस का कहना है कि उसके समय में उच्च जातीय नायर को सड़क पर अगर कोई पुलिया जाति का आदमी मिल जाय तो वह उसे वहां मार सकता था परन्तु अब वह ऐसा नहीं कर सकता परन्तु आज भी कोई पुलिया दूसरी जाति वाले के साठ या नब्बे

फीट से अधिक पास नहीं आ सकता। इस मानसिक स्थिति में रक्खी गई अछूतों में से कुछ जातियों का व्यवसाय ही अपराध करना रह गया है। इनमे से कुछ जेब काटने, कुछ जालसाजी करने, कुछ डाका मारने और दूसरे हत्या करने में विशेषज्ञ हो जाते हैं। यह अपराधी जातियां भारतवर्ष में फैली हुई हैं और इनकी संख्या पैंतालीस लाख है।

अंगरेजी सरकार का पहिला काम इन समाज पीड़ित लोगों की रक्षा करना था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सन् १८५४ में ही यह घोषणा करदी कि 'किसी भी लड़के को जाति के विचार से स्कूल या कालेज में प्रवेश करने से न रोका जाय' परन्तु सरकार के लिये घोषणा करना एक चीज है और बिना लोगों की इच्छा के विरुद्ध अछूतों को बराबर की नागरिक सुविधायें देना दूसरी चीज है। मद्रास सरकार की रिपोर्ट बतलाती है कि प्रान्त के ८१५७ विद्यालयों में केवल ६०९ में पंचम (अछूत) जाति के लोगों के बालकों को लिया जाता है यद्यपि नियम यह है कि 'जातिगत विचार के कारण किसी का प्रवेश निषिद्ध नहीं है'। अछूतों को स्कूल में प्रवेश का कानूनन अधिकार होने पर भी उन्हें भीतर आने का साहस नहीं होता क्योंकि शताब्दियों पहले इस प्रकार के अपराध का दण्ड मृत्यु ही होता था।

ग्राम-शिक्षा-कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है "बहुधा ऊंची जाति के मनुष्य अछूतों की उन्नति के सम्बन्ध में केवल उदासीन ही नहीं है वरन् जान बूझ कर बाधाएं डालते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यदि उन्होंने शिक्षा प्राप्त करली तो फिर उनसे इस प्रकार सेवा न कराई जा सकेगी। अछूत अपनी बस्तियों के विद्यालयों में भी जहां कि वे ऊंची जाति के बालकों को अशुद्ध नहीं कर सकते, अपने बालकों को पढ़ाते हैं तो उन्हें धमकी दी जाती है, यहां तक कि उन्हें अपने बालकों को उठा लेना पड़ता है।

बहुत ही कम अछूतों की संख्या विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रही है परन्तु फिर भी बीज वपन होगया है। बंगाल में नमशूद्रों की संख्या १,९९७,५०० है और नई सभ्यता के प्रभाव के कारण वे शक्तिभर आत्मोन्नति की चेष्टा कर रहे हैं और स्वयं अपने विद्यालय भी संगठित कर रहे हैं। गत रिपोर्ट से उनके ४९,००० बच्चे शिक्षा पा रहे थे जिनमें १०२५ हाईस्कूल मे और १४४ कालेज में पहुँच गये थे। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों मे भी कुछ उन्नति हो रही है, उनकी स्त्रियां जिन्होंने ईसाई मत ग्रहण कर लिया है वे भारत की कन्या पाठशालाओं के लिये अध्यापिकाओं और अस्पतालों में नर्सों की कमी को पूरा करती हैं।

मुझे एक बार अछूत के अर्थ का अनुभव हुआ जब मैं एक उत्तरीय भारत के नगर में एक बच्चों के अस्पताल मे थी, जहां कि एक अंगरेजी महिला को दिखाने के लिये भारतीय स्त्रियों की भीड़ की भीड़ लगी थी, उस समय एक आकर्षक और सुन्दर चहरे वाली नवयुवती बाहर द्वार पर अपने बच्चे को लेकर आ खड़ी हुई। मैंने उस अंगरेज़ महिला से पूछा कि वह भीतर क्यों नहीं आती तो मुझे जवाब मिला कि वह ऐसा साहस नहीं कर सकती क्योंकि अगर वह भीतर चली आवे तो यह सब स्त्रियां उठ कर चली जावें क्योंकि वह स्त्री अछूत है। वह स्वयं भीतर पैर रखना बुरा समझती है। मेरे पूछने पर कि वह कम से कम उतनी ही साफ और भली मालुम पड़ती है जितनी यह स्त्रियां उसने उत्तर दिया कि अछूत चाहे जितने बुद्धिमान हों या गन्दे न हों पर यह इस देश का रिवाज है। इस प्रकार वह अछूत स्त्री बाहर ही खड़ी रही और वह अंगरेज महिला जब सबको देख चुकी तो बाहर आई और उसके बच्चे को देखा। अछूत स्त्रियों को वे सब सुविधायें नहीं मिल सकतीं क्योंकि उन्होंने पहले जन्म मे पाप किये हैं और उनको उसका फल भोगना ही पड़ेगा।

तेरहवां-प्रकरण



जागृति

अछूतों में मानसिक अवनति में रहने के कारण अनेक अवगुण आ गये हैं पर अब भी शताब्दियों के पिसने के बाद भी अनेक गुण पाये जाते हैं। मद्रास में सरकार माहर अछूतों से हरकारे का काम लेती है और वे विश्वस्त प्रमाणित हुए हैं क्योंकि बिना एक कौड़ी भी चुराये सैकड़ों रुपये ले जाते हैं। बम्बई प्रान्त में अंगरेजों के नौकर अधिकतर जिन अछूतों में से आते हैं उनमें से ढेढ़ ईमानदार, शुभचिन्तक और संयमी होते हैं। प्रायः इनमें से ५,०००,००० ईसाई बन चुके हैं और उन्हें जाति के बन्धनों से स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई है पर हिन्दुओं के हृदय उनके विरुद्ध लगे हुए हैं। ब्रिटिश सरकार ईसाई प्रचारकों की सहायता से इस सामाजिक खाई को पाटने के लिये निरन्तर उद्योग और शिक्षा द्वारा इतना कार्य कर चुकी है और गत वर्षों से कुछ नवीन जीवन दृष्टिगोचर हो रहा है।

राष्ट्रिय और सामाजिक संस्थाओं में अछूतों के प्रति किये गये अत्याचारों का विरोध करने की प्रथा प्रचलित है परन्तु इस एक मात्र सहानुभूति से परिणाम बहुत कम निकलता है। कुछ ऐसी भी संस्थाएँ हैं जिनका उद्देश्य अछूतपन के विचार को दूर करना है, इनमें से भारत सेवक समिति, (Servants of India Society) आसाम और बंगाल में अछूतों को सहायता देने के लिये जोरों

गईं मि० सिन्हा की समिति और ब्राह्मो-समाज नाम मात्र को ही काम कर रही हैं।

गान्धी जी ने अपने यंग-इण्डिया में एक ब्राह्मण पण्डित का लेख देशी भाषा से अनुवाद करके छापा है जिसका एक अङ्ग यह भी है "अछूत प्रथा मनुष्य की उन्नति के लिये आवश्यक है। मनुष्य में आकर्षण शक्तियां होती हैं। यह शक्ति दूध के समान है और वह अछूतों के छूने से नष्ट होती है। यदि कोई मुश्क और प्याज़ को एक साथ रख सकता है तो वह ब्राह्मणों और शूद्रों को भी मिला सकता है।" प्रो० रसब्रुक विलियम्स का कहना है कि "जब श्रीयुत गान्धी जी का प्रभाव अपनी चरम सीमा पर था तब उन्होंने अपने देश वासियों को अछूतों के उठाने को भरसक प्रयत्न करने के लिये प्रभावान्वित किया और कट्टर लोग भी उनका विरोध न कर सके" पर अब अछूतपन के कायम रखने के पक्षपातियों की विजय है और बहुत थोड़े लोग महात्मा गान्धी जी के विचारों का समर्थन करते हैं।

इस बीच में अछूतों की सहायता करने के लिये एक नई बात आ पड़ी है। लड़ाई के बाद सरकारी नौकरियों और शासन में भारतीयों को शीघ्रता से अधिक स्थान दिया जा रहा है जिसके कारण तीन भाग हिन्दुओं और एक भाग मुसलमानों में कलह की ज्वाला उठ खड़ी हुई है और यहां बताया जायगा कि हिन्दू जाति अछूतों को अपनाने के लिये क्यों आकुल हो उठी है। सन् १९२० में सर टी० डब्लू० होल्डरनेस इस प्रकार लिखते हैं "........एक प्रश्न जो इस समय हिन्दुओं में उठ रहा है वह यह है कि यह हिन्दू गिने जायं या नहीं। दस वर्ष पहले जवाब स्पष्ट 'न' में होता, अब भी पुराने विचार वाले लोग इसी पक्ष में हैं परन्तु अधिक शिक्षित हिन्दू इस विषय पर अधिक उदार हो गये हैं। प्रतिद्वन्द्वी

मुसलमान राजनीतिज्ञ कहते हैं कि हिन्दुओं की एक तिहाई जन संख्या अछूत है, वे हिन्दू नहीं माने जाते और न उन्हें संस्कार कराने का या मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार है। इस तर्क के विरुद्ध इन अछूतों को हिन्दू धर्म के कटहरे में लेना आवश्यक है परन्तु यदि उन्हें इस तरह बुलाया जाता है तो तर्कवाद के अनुसार उन्हें अधिक मान देना आवश्यक है। शिक्षित हिन्दू इस बात को जानते हैं और भारतीय सामाजिक परिषदों में इन जातियों को उठाने का एक आवश्यक विषय होता है। परन्तु प्रत्येक सुधारक इस बात को स्वीकार करता है कि मनुष्यों के मस्तिष्कों में जातिगत विचारों के भाव इतने भीतर घर किये हुए हैं कि इस विषय में कुछ क्रियात्मक कार्य करना अत्यन्त कठिन है।

एक नई बात और है वह है कि विदेशियों की सहानुभूति के कारण अब अधिक दिन अछूत उच्च हिन्दुओं के निर्णय पर ही नहीं बैठे रहेंगे। इस्लाम जिसमें समानता का साम्राज्य है उन्हें अपने में मिलाने को तय्यार बैठा है। ईसाई उन्हें न केवल अपने धर्म में लेते ही हैं बल्कि उनकी शिक्षा और सहायता का प्रबन्ध भी करते हैं परन्तु प्रश्न यह है कि शताब्दियों से दबी हुई जातियों में धूल झाड़कर खड़े होने में कितने समय की आवश्यकता है।

सन् १९१७ में जब भारतमन्त्री श्रीयुत ई० एस० मोन्टेग्यु भारतवर्ष में आये और सब तरह के लोगों के, शासन सुधार देने के विषय में विचार सुने, इनमें जागृत और पढ़े लिखे अछूत भी थे जिन्होंने एक स्वर से स्वराज्य के विचार का विरोध किया। मद्रास प्रान्तीय अछूत समिति 'पंचम काल्वी अबि पीर थी-अबिमाना, संघ ने राजनीतिक परिवर्तन का विरोध किया और ब्राह्मणों से रक्षा करने की प्रार्थना की जिनका शासन में अधिक भाग प्राप्त करने का तात्पर्य एक सर्प का छोटे मेंढक का शिकार

करने के सदृश था।' प्राचीन निवासी ६०००,००० मद-रासी द्राविड़ों की सभा 'मदरास आदि द्राविड़ जन सभा' की ओर से कहा गया 'हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हम स्वराज्य के सर्वथा विरोधी हैं। हम अंगरेज़ों के हाथ से ऊंची जाति वाले हिन्दुओं के हाथ में शासन की डोर देने के किसी भी प्रयत्न का घोर विरोध करेंगे।.......हमारे अधिकार.......नहीं... वे स्वयं हमारे अस्तित्व तक को जब अस्वीकार करते हैं तब यदि शासन की डोर उनके हाथ में आ जाय तो वे हमारी किस प्रकार उन्नति करेंगे?'

शताब्दियों से जब से इनका इतिहास प्रारम्भ होता है अब से पहले कभी भी किसी ने उनके प्रति सहानुभूति या सहायता का हाथ नहीं बढ़ाया परन्तु यह कहानी यह बात बतलाती है कि युगों के अत्याचार के बाद भी आदमी मे अपने साथी को सहायता करने के उच्च भाव नष्ट नहीं हो जाते—गत महायुद्ध में तुर्किस्तान में 'कुट' नामक स्थान लेते समय बीच में ३०० गज चौड़ी एक नदी पड़ती थी। हमारा काम शत्रुओं को सोते हुए जा घेरना था। काले द्राविड़ मदरासी मजदूरों का कार्य रात ही रात में नावें ले जाकर तय्यार रखना था और वह उन्होंने समाप्त कर दिया पर जैसे ही नावों पर सिपाहियों को चढ़ाने का समय आया तुर्क जग पड़े और गोला बारी प्रारम्भ कर दी। हमारे सब विचार छिन्न भिन्न हो गये पर हम भी अड़े रहे। सिपाही तो नाव के पेंदे में लेट सकते थे पर नाव खेने वाले का गोले के सामने बैठना अति कठिन था, इस लिये अब कोई अवसर न रह गया था परन्तु उन छोटे मदरासियों ने उत्साह से कहा 'साहब! हम केवल मजदूर हैं, हमे नाव खेने दीजिये' बस फौज भाग कर नावों में नीचे लेट गई और मजदूर कूद कर जा बैठे और डांड चलाने लगे और

उसके बाद तुर्कों की तोपें! सत्तर नाव खेने वालों में से एक भी बिना घायल हुए नहीं बचा और बहुत से तो उनमें से मर गये। इस प्रकार कुट पर विजय पाई" और इन्हीं अछूतों को जब तक वे ईसाई न हों उन्हे कहीं से सहानुभूति नहीं मिलती।

सन् १९२१ में जब युवराज भारतवर्ष मे आये तब महात्मा गान्धी ने जो कि उस समय अपने प्रभाव की चरम-सीमा पर थे घोषणा की कि 'युवराज का आना हमारे जख्मों पर नमक छिड़कना है' और एक आम हड़ताल करने का आदेश दिया। राजनैतिक कार्यकर्त्ता इस चिनगारी को लेकर दौड़ धूप में लग गये और बम्बई में युवराज के आने पर रक्तपात और लूट मार हुई। ५० मनुष्य मारे गये और ४००घायल हुये। भारतवासी भारतवासी पर आक्रमण करने लगा। इस पर भी युवराज का स्वागत करने के लिये भीड़ की भीड़ आई और 'युवराज महाराज की जय' 'मुझे युवराज को देखने दो' की आवाजें सुनाई पड़ती थीं। युवराज जब महान् उत्तरीय द्वार 'खेबर पास' (Khyber Pass) से लौट रहे थे तब एक विचित्र दृश्य सामने आया। बहुत से अछूत लोग युवराज के प्रति राजभक्ति प्रकट करने को एकत्रित थे और वे चिल्लाये 'सरकार की जय' और जब युवराज ने उनके स्वागत का उत्तर देने के लिये मोटर धीमी की तब वे खुशी में उछलने और नाचने लगे। उन्होंने किसी अमीर को सिवाय दुतकारने के इस प्रकार बात करते न देखा था और न सुना था और यहां देवता सम सम्राट के पुत्र न केवल उनके स्वागत को स्वीकार करते थे वरन् उन्हें उसके लिये धन्यवाद देते थे फिर इसमें आश्चर्य ही क्या था कि उनकी आंखें खुल गईं, आत्मा गद्गद हो गई और वे चित्र लिखे से रह गये।

देहली में भी ये २५,००० अछूत उनका स्वागत करने के लिये आये और जब वह मांट-ब्रूक-राड पर पहुंचे तब एक ने सब

अछूतों के बीच में खड़े होकर एक झंडा फहरा दिया 'युवराज महाराज की जय' 'राजा के बेटे की जय' [सब ने मिल कर चिल्लाया और जब कि ऊंची जाति वाले हिन्दू अपने अन्दर ही अन्दर आश्चर्य करते थे और उनमें राजसी स्वाभिमान की कमी का विरोध करते थे, युवराज ने मोटर रोकली। इस पर अछूतों के नेता ने आगे बढ़ने का साहस करके ७०,०००,००० अछूतों की ओर से प्रेम प्रदर्शन किया और प्रार्थना की कि वे उन्हें उन लोगों के हाथ में न छोड़ें जो उन्हें गुलाम और पीड़ित रखना चाहते हैं। युवराज ने उसको पूरी तरह सुना। भारतवर्ष में पहले कभी ऐसा दृश्य नहीं हुआ। जब मोटर धीमे २ चली—उन्हें कुचलने के लिये नहीं—तब वे आवेश में पागल से हो गये।



चौदहवां-प्रकरण



नौकरी दो या मृत्यु दो

कुछ भारतीय राजनीतिज्ञों का मत है कि सर्वसाधारण में शिक्षा प्रचार के लिये उसे अनिवार्य कर देना चाहिये। वे कहते हैं इंगलैण्ड ने बहुत समय हुआ अपने देश में अनिवार्य शिक्षा करदी पर यहां सरकार ऐसा क्यों नहीं करती इसके स्पष्ट हो उन्हे अशिक्षित रखने ही से उसका अभीष्ट है। इसका उत्तर राजा पनंगल ने कड़े शब्दों में दिया था "व्यर्थ! ब्राह्मणों ने ५००० वर्षों में हमारी शिक्षा के लिये क्या किया? मैं ध्यान दिलाता हूं कि उन्होंने धर्म शास्त्र पढ़ने का साहस करने वाले नीच जाति के मनुष्य के कानों में सीसा पिघला कर भर देने का अधिकार जमा लिया। वे कहते थे कि विद्वत्ता सब उनके हिस्से में थी। हिन्दू राज्य से मुसलमानों के समय ने उन्नति की पर अंगरेजों के ही राज्य में शिक्षा प्राप्त करना सब का समान अधिकार हुआ।"

प्राचीन समय में ब्राह्मणों की विद्वत्ता चाहे जैसी हो पर वे शताब्दियों तक उसी पर सन्तुष्ट रहे। संसार के अन्य लोगों को ज्ञान का अनाधिकारी मानकर वे स्वयं धुंधली प्राचीन और मुर्झाई हुई सभ्यता पर सन्तुष्ट होकर रह गये। डुबॉईस ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखा है "मेरे विचार में वर्त्तमान समय के ब्राह्मण प्राचीन युग के ब्राह्मणों से किसी भी दशा में अधिक

विद्वान् नहीं हैं। इस लम्बे समय में अनेक असभ्य जातियां अज्ञान के अन्धकार में से निकल आई हैं और उन्होंने अपनी मानसिक शक्तियों को बढ़ा लिया है..............पर इस बीच में हिन्दू नहीं हिले डुले। हम उनमें मस्तिष्क या आचरण सम्बन्धी कोई उन्नति नहीं पाते न उनमे विज्ञान और कलाओं की उन्नति के हो कोई चिन्ह हैं। कोई भी निष्पक्ष मनुष्य इस बात को स्वीकार करेगा कि वह उन लोगों से बहुत पीछे हैं जिन्होंने सभ्य राष्ट्रों मे उनसे बहुत पीछे नाम लिखवाया था।"

वारेन हैस्टिंग और ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रयत्न से भारतीय सभ्यताकी उन्नतिकी ओर प्रयत्न किया जाना प्रारम्भ हुआ। डेविड हेरे और राजा राम मोहनराय के प्रयत्न से 'प्रतिष्ठित हिन्दुओं के लड़कों को अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं के सिखाने के लिये एक कालेज खोला गया पर इसके प्रति कट्टर हिन्दुओंने क्रोध और अविश्वास ही प्रगट किया। तीन बेपटिस्ट पादरियों ने कलकत्ता के पास एक स्कूल खोला और फिर सन् १८३० में ईसाइयों की ओर से एक कालेज खोला गया। सन् १८ ३० में राजा राममोहन-राय की सहायता से एक चौथा कालेज पाश्चातीय विज्ञान सिखाने के लिये खोला गया। इस समय सारे बंगाल में देशी भाषाओं के विद्यालयों का जाल पुरा हुआ था। पर यह राजा राम मोहनराय ही थे जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यहां के निवासियों की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि पुराने ढर्रे आर किताबों को हटा दिया जाय और पाश्चात्य विज्ञान के विषयों को अंगरेजी भाषा में सिखाया जाय। शिक्षा समिति के सभापति लार्ड मेकाले ने पाश्चात्य ढंग के विद्यालयों का जोरों से समर्थन किया। उन्होंने कहा कि जब हम सच्चा तत्व-ज्ञान और इतिहास पढ़ा सकते हैं तब हमें सर्व साधारण के व्यय पर ऐसी चिकित्सा प्रणाली जो एक

अंगरेज अश्व-वैद्य को भी लज्जित करे, ज्योतिष जिसे कि सुनकर अंगरेजी लड़कियां भी हंस पड़ें, ऐसा इतिहास जिसमें तीस फुट के बादशाह प्रत्येक तीस हजार वर्ष तक राज्य करें और भूगोल जिसमें मक्खन और शहद के समुद्र हों सिखाने का क्या अधिकार है? संस्कृत और अरबी के विद्यालयों में रुपया व्यय करना न केवल अपव्यय ही है वरन् अज्ञानता के वीरों को उत्पन्न करना है" इस सज्जन के विचारों का स्वागत केवल नवीन विचार के कुछ हिन्दुओं ने किया और अन्त में हिन्दू जाति के विरोध करते रहने पर भी शिक्षा सम्बन्धी व्यय पौर्वात्य के स्थान में पाश्चात्य प्रणाली में व्यय किया जाने लगा। सार्वजनिक शिक्षा विभाग प्रत्येक प्रान्त में स्कूल और कालेज खोलने के व्यक्तिगत प्रयत्न में सहायता देने के लिये खोल दिये गये।

इसके बाद सन् १८५७ से तीस वर्षों में मदरास, कलकत्ता बम्बई, लाहौर और इलाहबाद में पांच विश्वविद्यालय खुल गये लेकिन कठिनाई यही थी जैसी कि अब है कि वाणिज्य, वैज्ञानिक कृषि, जंगलात, इंजीनियरिंग, अध्यापन कोई भी विषय भारतीय आकांक्षा के अनुकूल नहीं पाया जाता। 'भारतीय राष्ट्र' ऐसा विचार सदा से भारतीय मस्तिष्क के बाहर की बात थी और समस्त भारतवर्ष का विचार करने का यहां के निवासियोंके आचार, नीति में बहुत अधिक अथवा सर्वथा अभाव है। यह भाग्यवाद, आवागमन और अहंवाद का आवश्यक परिणाम है।

सन् १९२३-२४ तक १३ भारतीय विश्वविद्यालयोंसे ११,२२२ ग्रेजुएट निकले, इनमें से ७८२२ ने कला और विज्ञान में २०८६ ने कानून में, ४९६ ने चिकित्सा में, १५० ने इञ्जीनियरिंग में, ५९८ ने शिक्षा कार्य में, १३६ ने वाणिज्य में और ८६ ने कृषि में पास किया, इसके अतिरिक्त ६८,५३० अंडर-ग्रेजुएट हुये। आवश्यक

विषय जैसे कृषि, स्वास्थ्यरक्षा और स्वच्छता, विज्ञान, शस्त्र-चिकित्सा, पशु विज्ञान आदि विषयों में बहुत कम भारतवासी शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रयाग के कृषि विद्यालय जिसमें २०० विद्यार्थी पढ़ सकते हैं केवल ५० विद्यार्थी हैं। "हम कुली नहीं बनना चाहते" वे यह कह कर चल देते हैं जब उन्हें मालुम होता है कि उन्हें जमीन और फसल का काम करना पड़ेगा। डायरेक्टर का कहना था कि यदि हम विद्यार्थियों को नौकरियों का वायदा कर सकें तो संस्था विद्यार्थियों से भर जाय।

मैंने किसी औद्योगिक विद्यालय के लिये नहीं सुना कि वहां जगह की कमी है। भारतवासी तो बी० ए० की डिग्री ज्ञान के लिये नहीं बल्कि इसलिये प्राप्त करते हैं कि उन्हें अच्छी नौकरी मिल जाय। वे अपनी और अपने कुटुम्बियोंकी आकांक्षा के कारण नौकरी के पीछे आकाश पाताल एक कर देंगे और अपने निर्बल शरीर को सर्वथा क्षीण बना डालेंगे। वे निर्बल और शक्तिहीन दशा में डिग्री लादे खड़े हैं और यदि उसका प्रतिफल प्राप्त नहीं होता तो तमाम कुटुम्ब निराशा में छा जाता है।

अब नीची जाति के मनुष्य भी ग्रेजुएट होते हैं पर वे भी बड़ी जाति वालों के ही मार्ग पर चलते हैं क्योंकि शिक्षा का सब से बड़ा उपहार ही 'इज्जत' है। इस प्रकार निराश हुये शिक्षित लोग नौकरी पाने में असमर्थ होते हैं तो वे अपनी शिक्षा और विकाश को दूसरी ओर नहीं लगाते। वे अपने कुटुम्ब की मान रक्षा के लिये अपना समस्त जीवन काहिली मे बिता देंगे पर छोटा काम नहीं करेंगे। एक ग्रेजुएट ने मुझ से कहा चूंकि मैं नौकरी प्राप्त करने में असफल रहा इसलिये अब मेरा बड़ा भाई मेरा पालन कर रहा है। एक दूसरे ग्रेजुएट को जिसने नौकरी प्राप्त होने में असफल होने पर एक अमरीकन व्यवसायी

को सहायता के लिये लिखा था उत्तर मिला "तुम लोग उधर ही क्यों भागते हो जिधर तुम्हारी जरूरत नहीं है और फिर इस लिये कुपित होते हो कि वहां कोई जगह नहीं है। तुम सब के सब कैसे सरकारी क्लर्क बन सकते हो? क्यों नहीं गांवों में जाते और वहां पढ़ाने, कृषि करने और स्वास्थ्य-रक्षा का काम करके विचार ग्रामीणों की उन्नति में भाग लेते। क्या तुम वहां एक काम करके ठीक तरह अपना भरणपोषण नहीं कर सकते?" भारतीय ने शांति से उत्तर दिया 'निसन्देह! लेकिन आप भूल जाते हैं कि यह सब करना मेरे लिये नीची बात है। मैं एक बी० ए० हूं। इसलिये यदि आप सहायता नहीं करेंगे तो मैं आत्म-हत्या कर लूंगा" और उसने कर ली।

इसी प्रकार की एक प्रार्थना संस्कृत कालेज के परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों ने लार्ड मेकाले से की थी कि हम भली प्रकार हिन्दू शास्त्रों के विषयों के ज्ञाता हो चुके हैं और हमें सार्टीफिकट मिल चुका है पर इस सब का परिणाम यह है कि हमें अपनी दशा सुधारने का बहुत कम अवसर मिलता है—देश वासी हमें सहायता करने और उत्साहित करने की ओर ध्यान नहीं देते। हम भली प्रकार रहने के साधन चाहते हैं और सरकार जिन्होंने हमारी इतनी सहायता की है हमें निराश न करेगी।

सरकार को नौकरी न देने के कारण सब जगह बुरा भला कहा जारहा है 'क्योंकि सरकार ही विश्वविद्यालयों को चलाती है। इसका तात्पर्य क्या होता है कि सरकार पढ़ाने के लिये हम से फीस लेती है और फिर हम जिस चीज के लिये पढ़ते हैं वही नहीं देती। ऐसी सरकार का बुरा हो, आओ उसे निकाल कर अपने और अपने मित्रों के लिये जगह करें।'

पन्द्रहवां—प्रकरण



हम दोनों का अभिप्राय अच्छा था

सन् १९१८ से सन् १९२० तक सात बड़े २ प्रान्तों में प्रारम्भिक अनिवार्य शिक्षा के कानून बन गये पर कुछ जगहों को छोड़ कर स्थानीय संस्थाओं ने (चुंगी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) वगैरः ने इन्हें काम में ही नहीं लिया। शिक्षा का कार्य स्थानान्तरित विषय (Transferred Subject) बन कर चुनी हुई व्यवस्थापक सभाओं के मंत्रियों के हाथ में आ गया और उन्हें और चुंगी को मालुम हुआ कि यह कार्य पूर्व अधिकारियों पर दोषारोपण करने से अधिक कठिन है और चुने हुए प्रतिनिधियों ने न तो बजट को ही लाभप्रद बनाना चाहा और न स्कूलों में अनिच्छुक माता पिताओं के लड़कों को ही खींच कर लाना चाहा। पंजाब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में एक सदस्य ने प्रस्ताव किया कि अनिवार्य शिक्षा में अछूतों को छोड़ दिया जाय, सम्मिलित न किया जाय। "मुलतान में अनिवार्य शिक्षा में उस आयु के लड़कों की संख्या २७ से ५४ और लाहोर में ५० से ६२ प्रति शत हो गई है परन्तु चूंकि अछूतों के पढ़ाने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं है, इस लिये उनके दोषी पिताओं को दण्ड भी नहीं दिया जाता और इस लिये अब हाल मे संख्या अधिक बढ़ना सम्भव नहीं है।"

समस्त भारतवर्ष में अनिवार्य शिक्षा के लिये १६८,०१३ विद्यालय हैं और उनमें छात्रों की संख्या ७,०००,००० है लेकिन समस्त

ब्रिटिश भारत में तीन करोड़ पैंसठ लाख बालक प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं पर अन्य कठिन देशों की तरह यहां भी इन्हें शिक्षा देने की अनेक कठिनाइयां हैं जिनमे से कुछ भारत ही की विशेषता हैं। हम अमरीका निवासियों ने जो प्रयत्न ८७ भाषा बोलने वाले फिलीपाइनीज को शिक्षित करने के लिये किये उन्हीं पर अभिमान करते हैं परन्तु भारतवर्ष में तो बिना किसी एक सर्वदेशीय भाषा के २२२ देशी भाषाएं हैं। फिलीपाइन द्वीप में सिवाय हमारे अक्षरों के अन्य कोई अक्षर व्यवहार में नहीं आते पर इस देश में ५० भांति की भिन्न २ लिपि हैं जिनमें २०० से ५०० तक टेढ़े २ अक्षर होते हैं और भारतवर्ष में फिलीपाइन द्वीप के समान ही सर्वसाधारण के लिये वर्त्तमान साहित्य बहुत कम या बिलकुल ही नहीं है।

फिलीपाइन द्वीप में सामाजिक भिन्नता केवल गरीब और अमीर श्रेणियों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है पर भारतवर्ष में प्रायः३००० जातियां भिन्न २ टुकड़ों में बंटी हुई है। फिलीपाइन द्वीप में उनकी योग्यता के विषय में चाहे जो कुछ कहा जाय पर वे कम से कम दो तीन साल के लिये दूर ग्रामों मे भेजे जा सकते हैं पर भारत-वर्ष में कोई भी शिक्षित आदमी गांवों में जा कर काम करना नहीं चाहता। इस लिये गांवों में शिक्षकों की बहुत ही कमी है।

फिलीपाइन द्वीप के निवासी शिक्षा के बड़े इच्छुक हैं और उसके लिये सब प्रकार के कष्ट सहने को तय्यार हैं। धनी फिलीपाइन निवासी अपनी बस्ती के लिये स्कूल खोलने को अच्छा दान भी देता है पर भारतवर्ष में सर्वसाधारण लड़कों की शिक्षा की ओर से उदासीनता है और लड़कियों की शिक्षा से शत्रुता है और वे उसके लिये कुछ भी व्यय नहीं करना चाहते।

२२२,०००,००० ग्रामीणों को शिक्षा कौन दे ? कौन भारतीय मतदाताओं को शिक्षित करने की कष्टप्रद चेष्टा करे जिनकी बुद्धिमत्ता पर ही एक उत्तरदायी सरकार की जड़ जम सकती है। कुछ समय हुआ एक अमरीका की मिशन बोर्ड ने बड़े बड़े भारतीय सज्जनों को एकत्रित करके पूछा कि अब भविष्य में क्या कार्य किया जाय ? इस पर उन्होंने आपस में सलाह करके कहा कि सब उच्च शिक्षा का प्रबन्ध (जो नगर का काम है) और धन को हमारे अधिकार में दे दिया जाय।

"क्या इसका तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष में अब अमरीका-निवासियों की आवश्यकता नहीं है ?"

उत्तर मिला—"इसका तात्पर्य यह नहीं है। आप अमरीका-निवासी ग्रामों की देख भाल करें।"



सोलहवां—प्रकरण



शिक्षा क्यों नहीं दी जाती ?

बहुधा भारतवासियों की अशिक्षा का कारण निर्धनता बत-लाया जाता है-यह सिद्धान्त इतना ही भ्रमजनक है जैसे कि मुर्गी और अण्डे का भावी कलह। भारतीय राजनीतिक दोषारोपण करते हैं कि सरकार हमें शिक्षा से वञ्चित क्यों रखना चाहती है। इस विषय में दो बातें विचारणीय हैं एक तो यह कि २४७,०००,००० जन संख्या में प्रायः ५० फी सदी स्त्रियां हैं जिनकी शिक्षा का विरोध भारतनिवासियों ने निरन्तर किया है। सरकार कुछ उन्नतिशील भारतवासियों और ईसाइयों के महान् प्रयत्न से केवल २ प्रति शत स्त्रियों को शिक्षा दे सकी है जिससे हिसाब लगाने से मालुम होता है कि अंगरेजी भारत में १२१,०००,००० अशिक्षित स्त्रियों की संख्या है। दूसरे ब्रिटिश भारत में ६ करोड़ मनुष्य अछूत हैं जिनकी शिक्षा का अब भी अधिकांश हिन्दू घोर विरोध करते हैं। इनमें से आधी स्त्रियों की संख्या जिसे हम पहले ही संभाल चुके हैं और ५ प्रति शत पढ़े हुये पुरुषों को इनमें से निकाल कर २८५००,००० मनुष्य बच रहते हैं जिनके अशिक्षित रहने का कारण देश का प्रत्यक्ष विरोध है।

ब्रिटिश भारत की अशिक्षित स्त्रियां	१२१,०००,०००
अशिक्षित अछूत पुरुष	२८,५००,०००
	१४९,५००,०००
ब्रिटिश भारत की कुल जन संख्या	२४७,०००,०००
ब्रिटिश भारत की वह संख्या प्रति शत जो हिन्दुओं के विरोध के कारण अशिक्षित रह जाती है।	६०.५२ प्रति शत

इन दो बातों के अतिरिक्त एक और बात है कि ९० फी सदी भारतवासी ग्रामीण हैं और जब तक गांवों में शिक्षा का प्रचार नहीं होता तब तक यह संख्या यहीं पर लटकी रह जायगी। संसार के समस्त मनुष्यों के आठवें हिस्से के लिये जो कि १,०९४-३०० वर्ग मील में फैले हुए हैं प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिये शिक्षकों की एक पूरी सेना की आवश्यकता है और फिर जब कोई स्त्री इस कार्य के लिये नहीं मिलती तब इस समस्या की कठिनाई को सोचिये। यदि हम अपनी स्त्रियों और लड़कियों की सहायता से वञ्चित कर दिये जांय तो सोचिये अमरीका के गांवों में शिक्षा का कार्य कितना कठिन हो जाय। भारतीय स्त्रियां भारतीय बालकों को क्यों नहीं शिक्षित कर सकतीं उसका कारण यही है कि बच्चा उत्पन्न करने योग्य अवस्था की स्त्रियां बिना विशेष रक्षा के पुरुषों के पास आने का साहस नहीं कर सकतीं।

गांव के स्कूलों में स्त्री शिक्षक क्यों नहीं मिलतीं इस विषय में मैंने अनेक सरकारी और गैर सरकारी लोगों से बातचीत की पर वे इसे स्वाभाविक बात मानते हैं, इस विषय में वार्तालाप बहुत कम सुनाई पड़ता है और गोरे शासक प्रजा के कुपित होने के कारण इस विषय पर चुप्पी साधे हैं। एक राष्ट्रिय और उच्च भारतवासी ने मुझ से कहा कि वास्तव में बात यह है कि यह बात

हमारे लिये इतनी स्पष्ट है कि हम इस पर विचार नहीं करते। स्त्रियों के प्रति जो हमारा भाव है उसके कारण सदाचारिणी और युवती स्त्रियां घर को नहीं छोड़ सकतीं। स्त्रियां जो अधिकतर ईसाई हैं और जो गांवों में पढ़ाने के लिये जाने का साहस करती हैं उन्हें तब तक कष्टप्रद जीवन व्यतीत करना पड़ता है जब तक वे अपने को पुरुषों की अभिलाषाओं पर समर्पण नहीं कर देतीं, यही बात स्त्री-नर्सों के साथ है। उच्च पदाधिकारियों से जो अब भारतवासी हैं शिकायत करने से उसका केवल स्थानान्तर हो जाता है। वास्तव में बात यह है कि हम भारतवासियों की दृष्टि में स्वतन्त्र और सदाचारिणी स्त्री हो ही नहीं सकती। यह हमारी प्रकृति से बाहर है।"

कलकत्ता यूनीवर्सिटी कमीशन ने जिसमें अंगरेज, हिन्दू और मुसलमान सदस्य थे इस विषय पर अपना निम्न मत प्रकट किया था "जब तक बंगाली पुरुष पर्दे में न रहने वाली स्त्रियों के प्रति प्रतिष्ठा और वीरत्व के भाव ग्रहण न करलें तब तक महिला शिक्षकों का मिलना असम्भव ही है।" एक अमरीकन महिला ने कहा "कोई भी भारतीय लड़की गांवों में अकेली नहीं जा सकती और अगर जाती है तो वह नष्ट हो जाती है। यह नवयुवतियां जो यहां एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाती हुई दृष्टिगोचर होती हैं उनमें से एक भी देश की भारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वहां जाने का साहस नहीं कर सकती क्योंकि वहां भय ही नहीं है बल्कि इस बात का निश्चय है। तब भी यह लोग चिल्लाते हैं कि हमें स्वराज्य दो।"

ऐसी स्थितियों में जो अध्यापिका का कार्य करना निश्चित करती हैं उन पर सामाजिक कलङ्क की दृष्टि से देखना अनिवार्य है। भारतीय स्थिति के एक निकटतम ज्ञाता लिखते हैं "यह कहा जाता है कि देश में ऐसा भाव फैला हुआ है कि सदाचारिणी स्त्रियां

इस कार्य को कर ही नहीं सकतीं।" इसका प्रारम्भ कहां से हुआ है यह देखना कठिन है पर इसके पक्ष में सम्भवतया यह तर्क उपस्थित किया जाता है "स्त्रियों के जीवन का उद्देश्य विवाह है, यदि वह विवाहित है तो घर के काम काज के कारण नहीं पढ़ा सकती। यदि वह पढ़ाती है तो गार्हस्थ्य कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकती अथवा उनकी अवहेलना करती है। यदि वह गार्हस्थिक कर्त्तव्य पालन नहीं करती तो उसे अविवाहित रहना चाहिये और अविवाहित स्त्रियां निकम्मी होती हैं।"

इस तर्क से एक उपाय दृष्टिगोचर होता है कि २६,८००,००० विधवाओं को कैद से निकाल कर इस संगठन कार्य में लगा देने से इस समस्या की पूर्ति की जा सकती है परन्तु यहां के धार्मिक वातावरण में अविश्वास से बड़ी रुकावट पैदा होती है। विधवाओं का दुर्भाग्य और बुरी दृष्टि तो जन्मसिद्ध 'अधिकार माना जाता है। गांवों में विधवा अध्यापिका को भी उसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है जो कि एक नवयुवती को और उसके सदाचार को नष्ट करने के लिये अन्दर और बाहर से लालच और दबाव पड़ता है। परन्तु इस नियम के कुछ प्रतिवाद भी हैं। सन् १९२२ में ब्रिटिश भारत की १२३,५००,००० स्त्रियों में ४३९१ स्त्रियां अध्यापिका-कक्षा में पढ़ रही थीं परन्तु इन ४३९१ स्त्रियों में से प्रायः आधी अर्थात् २०५० ईसाई समाज की स्त्रियां हैं।

स्वयं कृषक गांव की पाठशाला से बहुत कम सम्बन्ध रखता है। जब कभी भी उसे लड़के से पौहों की रखवाली और ऐसे ही कामों में सहायता मिल सकती है तो वह उसे पाठशाला से उठा लेता है जिसके कारण इन पाठशालाओं की उपस्थिति सदैव अनिश्चित रहती है। प्रायः किसान बिना अपने बच्चों से मजदूरी कराये अपने छोटे से गृहस्थ को पालन करने में

में अपना समय लगाते हैं। चार लाख वार्षिक आय वाला यह सत्ताईस वर्ष का युवक नागरिकता का सजीव उदाहरण है और यदि भारतवासी अधिक उत्तरदायित्व शासन को हाथ में लेना चाहते हैं तो उन्हें बातूनी आदमियों की जगह ऐसे युवक पैदा करने चाहिये।

एक पाठशालामें ७० या ८० बच्चे पांच या छः वर्ष के थे। मैंने पूछा "तुम इन छोटे बच्चों को इतने गहन विषय क्यों पढ़ा रहे हो ?" अध्यापक ने उत्तर दिया "पर यह इतने छोटे नहीं हैं जितना कि आप विचार करते हैं।" उन्हें ठूंठ बना दिया गया है, ओर उसका कारण है बुद्धिमत्ता से देखरेख की कमी, भोजन की कमी और मलेरिया। आप मलेरिया मच्छर से उत्पन्न होना बतलाते हैं, वे कहते हैं कि वह इसलिये फैलता है क्योंकि लोग भूखे हैं। ऐसे बच्चे, स्त्री और पुरुष आपको समस्त पश्चिमीय बंगाल में मिलेंगे। उनमें न जीवन है न शक्ति।

"ग्रामों में साधारण लोगों की शिक्षा के के पक्ष में बहुत ही कम मत है" और धनी जमींदार और धनी किसान भी अभी तक यह नहीं जान सके हैं कि किसानों को शिक्षा देने से उसका ही हित है।"

गांव का अध्यापक—युवक या वृद्ध—कमजोर हाथ और टांगों की हड्डियों, खाली और थके हुए कपार पर एक काला भारी कम्बल ओढ़े हुए बहुत गन्दा और अयोग्यता की मूर्त्ति होता है। संसार में भारतीय ग्राम पाठशाला से अधिक निर्जीव वस्तु और कोई नहीं हो सकती।

मैंने एक बार श्रीयुत गान्धी से कहा कि "क्या आपके शिक्षित युवक भारत की अधिक सेवा नहीं कर सकेंगे यदि वह राजनैतिक अधिकारों और सामाजिक उच्चता के स्थान में गांवों में जाकर वहां के लोगों के लिये अपना जीवन लगादें ?" गान्धी जी ने जवाब

दिया "हां! अवश्य लेकिन यह तो पूर्णता का उपदेश है" मैंने यही प्रश्न कलकत्ते के चार युवक नेताओं से किया जिसमें से तीन ने जवाब दिया "शायद! पर इस पर विवाद करना भी कार्य है। बात करना ही केवल इस समय कार्य है—जब तक कि हम विदेशियों को देश से न निकाल दें तब तक कुछ नहीं हो सकता।"

एक भारतीय हितचिन्तक अमरीकन व्यवसायी ने कहा "यदि मैं इस देश का शासन कर रहा होता तो मैं कल ही सब विश्व-विद्यालयों को बन्द कर देता। उन्हे क्लर्क, वकील और राजनीतिज्ञ बनाने के लिये पढ़ाना पाप है जब तक उन्हे रोटी बनाना न सिखा दिया जाय" एक दूसरे अमरीकन शिक्षक का कहना है कि "मैं इस विचार को पहुंचा हूं कि इस देश मे शिक्षा की कुल प्रणाली ग़लत है। इन लोगों के लिये सारे देश में दो पीढ़ो तक एक प्रारंभिक पाठःशाला होनी चाहिये थी। इसके बाद दो पीढ़ी तक व्याकरण की पाठशालाएं एक हाई स्कूल खोलने के पहले होनी चाहिये और सात या आठ पीढ़ी से पहले एक भी विश्वविद्यालय नहीं खुलना चाहिये।



अठारहवां—प्रकरण

मोक्ष-सेना का पाप

"इतने दिन के अंगरेजी राज्य के बाद भी भारतवर्ष अब तक इतना निर्धन क्यों है ?" भारतीय आन्दोलनकारी बार बार दोहराते हैं पर यदि वह अपनी आंखें दूर से हटा कर अपने पैरों की ओर ही देखें तो उन्हें इसका जवाब प्रत्येक दिशा से मिल जायगा। उदाहरण के लिये लीजिये—पशुओं का प्रश्न ही स्वयं भारतीय निर्धनता का पता बतलाता देता है। सन् १९१९-२० की पशुओं की जनगणना से मालुम होता है कि पौहों की संख्या १४७,०५५,५८९ थी। इनमें से प्रायः आधे पशु निकम्मे हैं, इनके लिये १७६४०००००० रु० प्रति वर्ष नष्ट होता है।

यह कहा जाता है कि हिन्दुओंके प्राचीन नेताओंने गौ की देश के लिये आवश्यकता समझी और इसलिये उन्होंने उनकी रक्षा करने और देवताके समान सम्मान करने की प्रथा प्रचलित कर दी। इस लिये इसके अनुसार आज भारतवर्ष गाय को बड़ा पवित्र मानता है। व्यवस्थापिका सभा में एक विद्वान् हिन्दू सदस्य ने इस प्रश्न को इस प्रकार रक्खा है जिसका विरोध सम्भवतया कोई हिन्दू नहीं करेगा "आप इसे पक्षपात कहिये, जोश कहिये अथवा धार्मिक उग्रता कहिये कि हिन्दू मस्तिष्क में गाय की पवित्रता इतना घर कर गई है जितना और कोई चीज नहीं।" गाय को मारना एक सबसे बुरे पापों में से एक पाप है। ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा साहब से मोटर चलाते समय अनजाने एक गाय की हत्या हो गई। कई वर्ष बाद उन्होंने अपने एक मित्र से कहा "मैं समझता हूं

मुझे उस पाप के लिये प्रायश्चित्त करने और ब्राह्मणों को दान देने का कभी अन्त न होगा।" मरते समय पूंछ पकड़ कर भवसागर पार करने के लिये गाय अवश्य होनी चाहिये और जब स्वर्गीय काश्मीर महाराज अन्तिम घड़ियां गिन रहे थे तब गाय मंगाई गई पर नियत की हुई गाय किसी भी तरह महलों के भीतर आने को राजी न हुई तब शीघ्रता से महाराज को ही गाय के पास पहुंचा दिया गया। घी, दूध, दही, गोबर और मूत्र से बना हुआ पंचगव्य पान करने से जान बूझ कर किये गये पाप भी नष्ट हो जाते हैं। अबे दुबोइस अपनी पुस्तक 'हिन्दू रीति रिवाज और धर्माचार' में लिखता है कि "मैंने प्रायः हिन्दुओं को गायों के पीछे गोचर भूमि जाते और मूत्र वर्तन में भरने के समय तक ठहरते देखा है। मैंने उन्हें अपने चुल्लू में मूत्र को भरते और मुंह में डालते तथा शरीर में मलते देखा है। इस प्रकार मलने से बाहर की तथा पीने से अन्दर की सफाई होती है"।

गांधी जी ने एक बार एक इटली निवासी प्रवासी का मत पौहों के विषय में जानना चाहा उसने उत्तर दिया यदि भारतवासी इतने निर्दयी और अपने पौहों की आवश्यकता समझने में मूर्ख न होते और वह अदल बदल करके चारा उगाते रहते तो उसकी कठिनाइयां दूर हो जातीं। इसके बाद उसने लिखा है जिस देश में गाय को मूल्यवान सम्पत्ति समझा जाता है (जैसा कि इटली में) वहां उसकी प्रेम और सावधानी से देख रेख की जाती है पर यहां तो उसे नाम मात्र के लिये आदर से देखा जाता है और उन्हें निर्दयतापूर्वक गौशालाओं और हत्या–भूमि में–क्योंकि उन्हें गोचर-भूमि कहना भूल है–भूखों मरने के लिये छोड़ दिया जाता है। भारतवर्ष को इन कसाईखानों और रोग–भूमियों को एक दम बन्द कर देना चाहिये और प्रत्येक भारतवासी को $\frac{१}{४}$ वां हिस्सा गोचरभूमि के लिये छोड़ देना चाहिये।

पौहों के विशेषज्ञों का मत है कि यदि १२० गायों को विना अन्य भोजन के गोचरभूमि पर ही रक्खा जाय तो उनमें से १०० ही जीवित रहेंगी और वीस मर जांयगी और यह जो २० मरेंगी वह सब से अच्छा दूध देने वाली होंगी क्योंकि जो अधिक दूध देती हैं वे अपने भोजन की उत्पत्ति प्रायः सब निकाल देती हैं और अपने लिये बहुत कम वाकी रखती हैं और इसका परिणाम यह होता है कि नस्ल कमजोर पड़ती जाती है। ३०० गायों के पीछे १ सांड़ होता है और यदि वह बहुत ही अच्छी नस्ल का हो तो भी इतनी अधिक थकान से अवश्य निर्वल हो जाता है।

अंग्रेजों के आने से पहले लूट मार, चोरी, डकैती और घरेलू झगड़े और युद्धों ने देश को भयङ्कर आपत्ति में डाल रक्खा था और इन सब का लक्ष्य आक्रमण किये गये मनुष्यों के पौहे ही होते थे। अंग्रेज सरकार ने ऐसी स्थिति को रोका, कुछ भाग के पशु मार डाले गये या भगा दिये गये, उस भूमि की गोचरभूमि को पूरा होने के लिये खाली ही छोड़ दिया गया ताकि वे आगे के लिये तैयार हो जाँय। साथ ही अंग्रेज सरकार ने रक्तपात, विनष्टता और गिरोह वन्दी को तोड़ा और शान्ति स्थापित की। ब्रिटिश सरकार का यह कार्य ऐसा ही था जैसा अमेरिका ने फिलीपाइन द्वीप में किया। ५० वर्ष हुए भारतवासियों का जीवन और धन सुरक्षित हो गया है, रोगों के आक्रमण को रोका गया है और दुर्भिक्ष लोप हो गये हैं। पौहे और आदमी बढ़ गये और सरकार ने इसलिये कि आदमी भूखों न मर जांय पट्टे पर और जमीन दे दी ताकि वे अपने लिये नाज की उपज करें पर उन्होंने अपने लिये तो खाने को पैदा किया पर गौ माता को भोजन पैदा नहीं किया इसलिये गौ भूखों मरती हैं।

उन्नीसवां–प्रकरण

पवित्र गौ

जो लोग गर्म देश में रह चुके हैं वे ही बालकों के लिये दूध की समस्या को समझ सकते हैं। फिलीपाइन द्वीप में कृषि-विभाग को अमरीका ने वहां के निवासियों के हाथ में दे दिया जिससे वह महत्त्वपूर्ण कार्य बिना खिले ही मुर्झा कर रह गया। पशु–पालन का विषय उस समय से एक प्रहसन हो गया है जिसे अमरीका कालेज के पढ़े हुए नवयुवक दफ्तरों में बैठ कर शब्दों के जाल में खेलते हैं और कुछ अस्थिपञ्जर वत बन भूखे पौहे पिञ्जरापोलों में अपना अस्तित्व रखे हुये हैं। अब तक वहां यह समझा जाता है कि गर्म देशों में न तो पौहों का ठीक पालन-पोषण हो सकता और न वे अच्छा और अधिक दूध दे ही सकते हैं परन्तु अंगरेजी शासन के अन्तर्गत भारतवर्ष ने इस विषय में बहुत कुछ उन्नति करली है। मैंने लखनऊ के फौजी डेरी फार्म में एक अमरीका और पंजाब के मिली हुई नस्ल की गाय को देखा जो आठवें बच्चे के बाद ३०५ दिन में १६,००० पौण्ड दूध दे चुकी थी। उसने सातवें बच्चे पर १४,८०० पौण्ड दूध दिया था। एक दूसरी गाय ने ३०५ दिन में १५, ३२४ पौंड दूध दिया था। इन बलशाली पौहों के दूध से ४.०५ से ५.०५ प्रतिशत तक मक्खन बैठता है। पर यहां के सब पौहों का दूध का औसत २.१ पौण्ड प्रति दिन प्रति पशु है और इस लिये फिर भी अभी इस दिशा में बहुत कार्य करना है। भारतवर्ष की नब्बे प्रति शत गाय वर्ष भर

में ६०० पौंड अर्थात् करीब डेढ़ पौंड प्रति दिन से अधिक दूध नहीं देतीं।

राजाओं और जमींदारों में मुट्ठी भर लोगों को छोड़ कर पौहों के पालन पोषण का काम अज्ञान और निर्धन ग्वालों के हाथ में है। मैंने उन्नति और परिवर्तन के भावों को बहुत कम पाया। उदाहरणतया एक गांव को सरकार की ओर से बहुत अच्छी नस्ल का एक सांड दिया गया और जब अति व्यवहार से बीमार होकर वापिस अस्पताल में आया तो उसका ढचरा निकल आया था। मैंने स्वयं उसे जानवरों के अस्पताल में देखा जिसे देखकर ही कहा जा सकता कि वह भूखों मारा गया है, निर्दयता से पीटा और लंगड़ा कर दिया गया है। उसकी टांगों पर लाठी के जख़्म थे। वे अपने पौहों की नस्ल सुधारने के लिये कुछ व्यय नहीं करते।

इसके अतिरिक्त ऐसे लोगों में अच्छे बुरे पौहों की जांच करना बड़ा मुश्किल है जो दूध इस कारण नहीं तोलेंगे कि ईश्वर की देन को तोलना पाप है और अगर हम ऐसा करेंगे तो हमारे बच्चे मर जायंगे। भूखों मरने और बुरे सांडों का उपयोग करने के अतिरिक्त पौहों के नष्ट होने का एक और कारण है और वह यह है कि देश की अच्छी दूध वाली गायें हटा दी जाती हैं। वे अच्छी से अच्छी उत्तर पंजाब प्रदेश की छोटी आयु की गाय खरीद कर लाते हैं और सब दूध निचोड़ने के पश्चात् अयोग्य होने पर कसाई को बेच देते हैं। यह बड़ी संख्या में होता है जिससे अच्छी नस्ल की गाय कट जाती हैं और देश के साधन नष्ट होते जा रहे हैं।

भारतवासियों के विचार में नगर में रहते हुए वे गर्मी में गाय का पालन करने के लिये व्यय नहीं कर सकते और न उसे कहीं रखने का प्रबन्ध ही कर सकते हैं, इसलिये वे नष्ट कर दी जाती हैं।

ईद पर जिसमें गाय की क़ुरवानी करने का नियम है, उसके लिये सरकार को तय्यार रहना पड़ता है। उस समय हिन्दुओं के भाव चोटी पर पहुंच जाते हैं और खून खरावी, वलवा, लूट मार होना आवश्यक हो जाता है। क्या हमारे ही घर में राक्षस लोग गौ माता की जिसकी पवित्रता हिन्दू धर्म की जड़ में समाई हुई है हत्या करेंगे? गान्धी जी भारतीय मस्तिष्क को इसी ओर सङ्केत करते हुए कहते हैं "हम यह भूल जाते हैं कि कुरवानी के लिये जो गाय मारी जाती हैं उससे सौगुनी व्यवसाय के लिये मारी जाती हैं..........गाय अधिकतर हिन्दुओं के पास ही हैं और यदि हिन्दू ही गाय न वेचें तो कसाइयों के व्यवसाय का अन्त हो जाय" गान्धीजी ने फिर दुवारा इस विषय पर लिखा है कि भारतीय उद्योग पंचायत (Indian Industrial Committee) ने एक गवाह से पूंछा "क्या इन कसाईखानों ने कोई उत्तेजना पैदा की है?" गवाह ने जवाव दिया "उन्होंने उत्तेजना घृणा से नहीं वरन् लोभ के कारण फैलाई है। मेरे विचार में चुंगी के वहुत से सदस्य इन कसाईखानों के साझीदार हैं। ब्राह्मण और हिन्दू भी साझीदार पाये जाते हैं" गान्धी जी इस पर कहते हैं कि "यदि कोई ईश्वरीय सरकार है तो हमें इसका जवाव देना पड़ेगा।"

शब्दों और वाक्यों का महत्त्व और वजन भारतवासी के लिये हमारे समान नहीं है। हम समझ वैठते हैं कि उसके विचार भी उसके कथन के समान ही हैं। उसकी अंगरेजी भाषा की निपुणता हमें धोखे में डाल देती है। उदाहरणतया अमरीका में एक भारतवासी व्याख्यान देते हुए कहता है कि वह सव जीवों का आदर करता है और उसके हृदय में उनके प्रति दया के भाव हैं और हम में आत्मिकवाद की कमी है और न जीव का महत्त्व ही समझते पर यदि इससे हम यह समझलें कि भारतवर्ष में वहुधा मनुष्य

जीव के प्रति साधारण मनुषत्व का भी व्यवहार करते हैं तो हम भूलते हैं। मैंने एक नवजवान ब्राह्मण से पूछा "मुझे खेद है कि तुम पूंछ मरोड़ने से बैलों और गायों को बड़ा कष्ट देते हो। उस गाड़ी में जुते हुए बैलों को देखो! उनकी पूंछ की प्रत्येक हड्डी टूट गई है जिससे उसे बड़ी पीड़ा होती है।" नवजवान ब्राह्मण ने उत्तर दिया "हां! यह ठीक है कि हम ऐसा करते हैं पर यह आवश्यक है। जब तक उनकी पूंछ नहीं मरोड़ी जाती तब तक वे पर्याप्त तेजी से चलते ही नहीं।" हावड़ा पुल पर खड़े होकर आप देख सकते हैं कि किसी भी बैल की पूंछ ऐसी नहीं है जो रस्सी की तरह मरोड़ी न गई हो। दूसरा उपाय जो गाड़ीवान पौहों को जल्दी चलाने के लिये करते हैं वह यह है कि एक लकड़ी से पोतों को कोंच देते हैं। भारतवर्ष में यह एक उलझन है कि जिस आदमी की बैल ही सबसे कीमती सम्पत्ति है, उसे वह भूखा मार कर तब तक इतना अधिक लादता है जब तक वह मर कर गिर न पड़े। अंगरेज इस बेरहमी को देखते हैं तो दण्ड दिलाते हैं पर देश में अंगरेज बहुत थोड़े हैं और ऐसे भारतवासी बहुत ही कम मिलते हैं जिन्हें इन गूंगे जीवों पर की गई बेरहमी पर क्रोध उत्पन्न होता है

भारतवर्ष में 'फूके' की प्रथा बहुत प्रचलित है जिसमें एक लकड़ी जिसके सिरे पर फूंस बंधा होता है Vagina में डालकर मरोड़ी जाती है जिससे जलन हो। इससे गाय को बड़ा कष्ट होता है और बांझ हो जाती है जिसकी ग्वालाओं को कोई चिन्ता नहीं होती क्योंकि वे उसके बाद कसाईखाने में बेच सकते हैं। गान्धी जी कहते हैं कि कलकत्ते के ग्वालाओं के यहां १०००० में से कम से कम ५००० गायों पर यही प्रयोग किया जाता है। गान्धी जी पेयरी रंग के बनाने की क्रिया का उल्लेख करते हुए

कहते हैं कि "गाय को किसी प्रकार का अन्य भोजन या जल न देकर केवल आम के पत्ते ही खिलाने से पेशाव के रूप में रंग निकलता है जो अच्छे भावों वेचा जाता है पर वह जानवर अधिक दिन तक जीवित नहीं रहता।"

नगर में प्रायः गाय वछड़े के साथ ही लाई जाती है पर ग्वाला वछड़े को रखना नहीं चाहते और उसका धर्म उन्हें मारने की आज्ञा नहीं देता पर वह एक नया ही तरीका उससे पिण्ड छुटाने का निकाल लेता है। कुछ भागों में वह थोड़ा सा दूध, उस धार्मिक शिक्षा के कारण जिसका कि अभिप्राय यह है कि जो गाय से वछड़े का वियोग करता है उसे स्वयं दूसरे जन्म में बछड़ा होना पड़ता है, उसे दे देता है, पर वह उसे जीवित रखने के लिये पर्याप्त नहीं होता। वह लड़खड़ाती हुई टांगों से अपनी मा के साथ २ एक घर से दूसरे घर पर दूध वांटने के मार्ग में घिसटता फिरता है और जव अन्त आ जाता है तो ग्वाला उसकी खाल में भूसा भर के साथ ले लेता है और जब किसी ग्राहक के द्वार पर दूध देने के लिये ठहरता है तव वह उसे उसकी मा के सामने खड़ा कर देता है ताकि वह उस से अधिक दूध निचोड़ सके। वहुत सी वड़ी जगह नवजात वछड़े नालों में फेंक दिये जाते हैं जहां उनका अन्त हो जाता है। भारतवर्ष में पौहों की खाल मशक के काम मे लाई जाती है और उसे प्राप्त करने के लिये उन्हें भूखे वाजार में छोड़ दिया जाता है या बाँध कर मार डाला जाता है।

गावों में गायों की दशा और भी दयनीय है। जव वे अधिक रोगिणी या दूध देने के लिये अधिक वृद्ध हो जाती हैं तो उन्हें जंगल में हांक दिया जाता है और सींगों अथवा पैरों से रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण गांव के भूखे कुत्ते चीड़ फाड़ कर खा जाते हैं।

कोई भी पाश्चात्य प्रदेशों का यात्री ऐसा न होगा जिसने इन कुत्तों को न देखा हो। वे प्रत्येक रेल के स्टेशन पर घूमते हुए अथवा मोटर की खिड़कियों के नीचे छिपते हुए दिखाई देते हैं। अस्थि-पञ्जरवत शरीर और बड़ी भयङ्कर आंखें! यह कैसे विचित्र नारकीय जीव दृष्टिगोचर होते हैं जिनकी संख्या बढ़ती चली जाती है। वे नाली और दुकानों पर गाय और बकरियों से पेट भरने के लिये लड़ते दिखाई पड़ते हैं। वे रात में नगरों में भी कभी २ घूमने वाले गीदड़ों के काटने से पागल हो जाते हैं पर हिन्दू धर्म के अनुसार न तो उन्हें नष्ट किया जा सकता है, न उनकी संख्या रोकी जा सकती है और चूंकि कुत्ता अपवित्र होता है इसलिये न उसके घावों और टूटी हुई हड्डियों की चिकित्सा ही हो सकती है। गान्धी जी ने एक बार पागल कुत्तों को मारने के पक्ष में अपना मत दे दिया इस पर एक बड़ा आन्दोलन खड़ा हो गया। अहिंसा के इस देश में भूखों मरते हुए कुत्ते को रोटी का टुकड़ा देना या उसे कष्ट से छुटकारा देना बहुत बड़ा पाप है और चूंकि प्रत्येक बात धर्म की आड़ में ही होती है इसलिये भारत के अन्य कई दुर्भाग्यों के साथ कुत्तों का दुर्भाग्य भी एक परिधि में घूमता चलता है।

बीसवां-प्रकरण

—※—

दया का गुण

पशुओं के साथ निर्दयता का व्यवहार करने के विरुद्ध कानून बन गये हैं पर उनका व्यवहार में लाया जाना बहुत कुछ सर्व-साधारण पर ही निर्भर रहता है और गान्धी जी के पत्र यंग इण्डिया की आवाज़ अरण्यवन में रोदन की तरह रह जाती है। यदि स्वयं जनता में कोई भाव जागृत नहीं होते, यदि स्वयं पुलिस जो कि सर्व साधारण में ही से भर्ती की जाती है वे इस कानून को मूर्खता और अधार्मिक समझते हैं और जिनका कार्य इन कानूनों की आड़ में अवसर मिलते ही जेब भरना है तब सरकार के काम में बहुत कुछ रुकावट होती है। भारतीय व्यापारियों के विरोध करते रहने पर भी बंगाल में १६ मार्च सन् १९२६ को व्यवस्था-पिका सभा में पानी लादने वाले बैलों का ज्येष्ठ मास की टीकाटीक दोपहरी में दयनीय दशा को रोकने के लिये एक कानून बनाया गया जिसमें बैलों को अधिक न लादा जासके। 'फूंका' की प्रथा को बन्द कर दिया गया है और इसके विरुद्ध करने वालों को कड़ा दण्ड नियत कर दिया गया है। सन् १९२६ में बम्बई सरकार ने कानून बना कर पुलिस को अधिकार दे दिया कि यदि वह किसी जानवर को बहुत बुरी दशा में पाये जिसमें उसे अस्पताल ले जाना निर्दयता हो तो वह उसे मार डाले और यदि मालिक इसके लिये सहमत न हो तो पुलिस को किसी सरकारी पशु-विशेषज्ञ की आज्ञा ले लेना आवश्यक है। भारतवासियों की

आदतों से जिससे कि वह रोगिणी और भूखी गायों को गलियों में हांक देते हैं इस कानून का कम महत्व नहीं है पर बम्बई व्यवस्थापक सभा के हिन्दू सदस्य श्री० ऐस०ऐस० देव नें इसका विरोध करते हुए कहा था "इस प्रस्ताव का सिद्धान्त भारतीय मस्तिष्क के लिये क्रान्तिजनक है ? पशुओं के साथ बेरहमी रोकने की आड़ में आप ऐसी स्थिति में मनुष्य को गोली नहीं मार सकते तो जानवरको कैसे मार सकते हैं।"" ""इसके अतिरिक्त यदि यह प्रस्ताव कानून रूप में परिणित हो गया तो वह व्यवहार में लाने के समय बाजारों में झगड़े पैदा कर देगा।" पश्चिमीय सिन्ध के सदस्य श्री० बी० जी० पहलाजनी कहते हैं "अङ्गरेज सदस्योंको जिनमें से बहुतसे ३० साल से ऊपर यहां रह चुके हैं जानना चाहिये कि कोई भी हिन्दू किसी भी गाय को।फिर वह चाहे किसी भी दशा में हो मरने नहीं देगा। देश में गोशालाएं और पिंजरापोल हैं जिनमें रोगिण और अत्यन्त खराब गायों का पालन पोषण होता है। इसका अभिप्राय यह है कि जानवरों में जीव नहीं होता और यदि वे अच्छी स्थिति में नहीं हैं तो उन्हें गोली से मार दिया जाय। आत्मा के सम्बन्धमें हिन्दुओं के विचार पाश्चात्य विचारों से बहुत भिन्न हैं।" इसका उत्तर सरकारके सेक्रेटरी श्री०ए० मोंट मोगरी ने दिया "क्या बम्बई के बाजारों में यह भला लगता है कि इस प्रकार टांग टूटे हुये, रक्त बहती हुये और दयनीय कुछ जानवरों को घूमने दिया जाय ? मनुपत्व तो यही है कि उन्हें इस दुख से छुटकारा दे दिया जाय। उन्हें इस दुख में पीड़ित होने देना और इस प्रकार डोलते हुए सम्भवतया मोटर से टकरा के टुकड़े २ होजाने पर उठवाना अमानुषिक है।" व्यवस्थापक सभा के भारतीय सदस्यों ने इसका विरोध किया और श्री० आर० आर० जी० बोमन ने कहा "इस कार्य के लिये व्यय करना अपव्यय है और मैं इसी बात पर इसका विरोध करता हूं।" इस वादविवाद के अन्तमें राय साहब डी० पी० देसाई

ने कहा कि यह विरोध दया को दो भिन्न २ दृष्टि से देखने के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रस्ताव के उपस्थित करने वाले एक पशु जो बीमार हो और अच्छा न हो सके उसे मार देना ही अच्छा समझते हैं और हमारे विचार में जो कुछ हो रहा है वही ईश्वरेच्छा है।"

इस प्रकार सरकार का यह उद्योग विफल हुआ। सरकार ने सन् १८९० में जीवों पर बेरहमी रोकने के लिये कानून बना दिया था पर सन् १९१७ में दफा ५ को स्पष्ट करना आवश्यक समझा गया और जीवित बकरे की खाल खींचना क्योंकि वह मृतक बकरे से कुछ बड़ी और कुछ ज्यादा कीमती बिकती है, गैर कानूनन कर दिया गया पर फिर भी सन् १९२५ में बिहार और उड़ीसा प्रान्त में ही ३४ अभियोग पुलिस द्वारा चलाये गये पर भारतीय न्याया-धीशों ने, जिनके विचारों पर इससे कुछ आघात नहीं पहुँचता, थोड़ा सा जुर्माना करके छोड़ दिया, जिसकी कसर अभियुक्त दूसरे जीवित बकरे की खाल खींच कर और अधिक मूल्य में बेच कर निकाल लेगा।

प्रायः तीन चौथाई शताब्दी से अङ्गरेज सरकार स्वयं अपने दया के दृष्टि कोण को व्यवहार में लाये जाने की चेष्टा कर रही है पर जहां के लोगों को अपनी स्त्रियों पर ही कुव्यवहार करते दया नहीं आती उनसे मूक जीवों पर दया के भावों की कैसे आशा की जा सकती है? जीवों की इस असहाय अवस्था में एक और दुख का कारण है और वह यह है कि जान-वरों पर बेरहमी रोकने का कार्य भी एक भारतीय मंत्री को दे दिया गया है और इस प्रयोग के लिये मूक सृष्टि को भुगतना पड़ रहा है।

इक्कीसवां-प्रकरण



अपने मित्रों के गृह में

एक पशु चिकित्सक का वाक्य है "यह देश संसार में जानवरों के लिये सबसे बेरहम है। हम पाश्चात्य लोग जिस दृष्टिकोण से दया को समझते हैं भारतवासियों के धर्म में उस दृष्टि में जीव या मनुष्य के प्रति दया के भाव नहीं हैं। श्री गांधी कहते हैं हमारे देश में जहां कि गाय की इतनी प्रतिष्ठा है गौओं सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न ही नहीं होनी चाहिये पर हमारी गौ-भक्ति अज्ञान और धार्मिक मूढ़ता में परिणित हो गई है।"

यहां गौशालायें पिंजरापोलों की तरह पोहों के लिये शरण-स्थान हैं जो हिन्दू व्यवसायियों के बड़े बड़े दानों से चलती हैं। एक सरकारी कर्मचारी ने मुझ से एक बार कहा "सरकार को एक बार गौ-हत्या बन्द कर देने दो, और इतना रुपया उसे मिल सकता है जितना रुपया वह अधिक से अधिक खर्च कर सकती है साथ ही मिलेगा 'मुसलमानों से एक युद्ध।'

यह माना जाता है कि एक मनुष्य गाय की रक्षा करने से देवताओं की कृपा का अधिकारी बन जाता है पर फिर भी हिन्दू होकर कसाई को गाय बेचने से उसकी आत्मा को क्लेश नहीं होता क्योंकि मारता तो कसाई ही है। इसके बाद जो कीमत मिले उसमें से थोड़े से रुपये में एक सड़ी सड़ाई गाय लेकर गौशाला में दान कर देता है और इस तरह स्वर्ग और धन दोनों कमा लेता है।

मैंने स्वयं कितनी ही गौशालाओं और पिंजरापोलों को देखा है पर मुझे आश्चर्य है कि इनके संरक्षक क्या कभी भीतर जाकर उनकी स्थिति भी देखते हैं। एक पशु-प्रेमी पाश्चात्य प्रवासी सज्जन ने मुझ से कहा " हिन्दू जो कि धर्मार्थ गौशाला में दान देने के लिये गौ खरीदते हैं वह बहुत निकम्मी और रोगिणी ही खरीदते हैं क्योंकि वह उन्हें सस्ती मिलती है और वे जब गौशाला में भेजते हैं उसके पालन पोषण के लिये कुछ नहीं देते या बहुत ही अपरियाप्त देते हैं और अगर वे देते भी हैं तो रख-वाले अपनी अंटी गरम करते हैं। मैंने स्वयं एक गाय को कृमियों द्वारा मरते देखा और वह तब तक असहाय पड़ी रही जब तक कीड़ों ने उसे खा कर मार न डाला" मैंने एक रखवाले से पूछा " क्या तुम उसके लिये कुछ नहीं कर सकते ?" क्यों उसने जवाब दिया 'मैं क्यों करूं ? किस लिये ?" इसी प्रकार एक अमरीकन विशेषज्ञ ने कहा है कि "मैंने इन गौशालाओं में प्रायः गबन और कुप्रबन्ध ही पाया। जानवर जो कि वहां कैद रक्खे गये थे उनकी बुरी दशा कोई भी देख कर कह सकता है। जब वहां के कर्मचारियों को मालुम हुआ कि मैं इनके कार्य की बेतुकी प्रशंसा नहीं कर सकता तो उनकी दृष्टि में मैं अनुपयोगी साबित हो गया।" दूसरे दिन दयालबाग़ के गुरु से मैंने सम्मति ली और उन्होंने कहा " मैं इन गौशालाओं में से दो में एक बार यकायक पहुंचा और जो दृश्य मैंने वहां देखा वह इतना भयंकर था कि मैं दो दिन तक भोजन नहीं कर सका।"

दुग्धशाला के भारतीय विशेषज्ञ ने मुझ से कहा कि धनी व्यवसायी मनों रुपया गोपालन के लिये देते हैं पर वह सब व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। उनकी स्थिति, उससे जब कि वे नालियों में खाने के लिये मुंह डालती फिरती थीं और मोटर से कुचल

जाने का सुखद अवसर मिल जाता था, नहीं सुधरती। वे अभागहीन पञ्जरवत् पाई जाती हैं और उनकी रक्षा करने वालों में न उनके लिये चिन्ता है न ज्ञान है।

मैंने जो गौशाला देखी उसके दरवाजे पर कृष्ण वर्ण भगवान कृष्ण का चित्र था जो गौओं के लिये वंशी बजा रहे थे और ऊंची दीवारों के भीतर एक सुन्दर बंगला फलों के एक सुन्दर बाग में था जिसमें गौशाला का प्रबन्धक रहता था। बाग के दूसरी ओर जहां पेड़ का नामो निशान न था खुले हुए अरक्षित बरामदे जहां बरसात के दिनों में भारी कीचड़ हो जाती है वहां कुछ जानवर थे जिनकी हड्डियां मांस के बाहर निकली हुई थीं। कुछ जमीन पर पड़ी हांफ रही थीं, कुछ के घाव हो रहे थे जिन पर चिड़ियां चोंच मार रही थीं। कुछ की टांग टूटी हुई थीं और वे घिसटती हुई चलती थीं, सब ही भूख से पीड़ित थीं। गायों के समान ही अत्यन्त पीड़ित बैल उनके बीच में खड़े थे और एक कोठरी में करीब २५० बछड़े भरे हुए थे जिनका करुण क्रन्दन श्रवणगोचर हो रहा था। ग्वालों से पूछताछ करने पर मालुम हुआ कि बहुत थोड़ा दूध तब तक इन बछड़ों को मिलता है जब तक वे भूख में मर नहीं जाते और बाकी का दूध गौशाला का प्रबन्धक बाज़ार में बेच देता है। बड़ी गायों को पावभार भूसा मिलता है और कभी २ सूखी भुसी भी। उनके लिये न अहाते थे और न चरने के लिये मांद ही थीं। पीछे इसी तरह मृत्यु तक खड़े या पड़े रहते हैं। एक गाय के केवल एक टांग थी, एक टांग कुटने से नीचे तोड़ दी गई थी क्योंकि वह दोहने के समय लात मारती थी। मैंने गौशालाओं में कुछ पंगु गाय देखीं जिनकी एक टांग पांच टांग वाली गाय बनाने के लिये काट दी गई थी। बछिया दुर्भाग्य से बच गई और उन्हें गौशाला

बाईसवां-प्रकरण



कड़ी आवश्यकता का घर

बहुधा शिक्षित लोगों में प्राचीन स्वर्णयुग की प्रशंसा बहुत अधिक सुनाई पड़ती है जब कि 'यह देश यश, वैभव, स्वास्थ्य, बुद्धिमत्ता, सुन्दरता और शांति का घर था और ब्रिटिश सरकारने आकर उसे नष्ट कर डाला। क्या आप मानते हैं कि चन्द्र-गुप्त कभी हुआ? क्या वह वही मनुष्य था जो सेल्युकश और अलक्षेन्द्र से लड़ा? अच्छा! तो उसके समय में एक चौदह वर्ष की सुन्दर लड़की जवाहरातों से लदी हुई स्वतन्त्रतापूर्वक इधर उधर जा सकती थी। उस समय पूर्णतया: शांति थी, न निर्धनता थी, न अकाल था, न प्लेग पर अंग्रेजों ने आकर इस स्वर्णयुग को नष्ट कर दिया' लेकिन ब्रिटिश सरकारके आनेके उन्नीस सौ साल पहले ही चन्द्र-गुप्त का युग, चाहे वह कैसा ही युग क्यों न हो, नष्ट हो चुका था। उत्तरीय पर्वत के मार्गों में से तुर्क आये और यहां उन्होंने अपना साम्राज्य स्थापित किया और फिर धीरे २ विजेता हिन्दू जाति में ही मिल गये। फिर कलाकौशल का गुप्त-वंश का समय आया और उनका हाथ ढीला होते ही फिर जंगलियों के झुण्ड के झुण्ड आये जिन्होंने यहां के सारे सामाजिक ताने बाने को छिन्न भिन्न कर दिया। इन हूण लोगों ने देश की सब प्राचीन बातों को नष्ट कर दिया। सीथियनों के समान हूण लोग भी हिन्दुओं में मिल गये और हिन्दू धर्म जिसे बौद्ध धर्म नष्ट कर चुका था फिर

जागृत हो गया। उसके छिन्न भिन्न करने वाले तत्व और लाखों भयङ्कर देवता फिर काम करने लगे। इस प्रकार सतरहवीं शताब्दी में कुछ वर्षों को छोड़ कर उत्तर या दक्षिण कहीं भी राष्ट्रीय एक्यता या स्थिर राज्य स्थापित करने की चेष्टा नहीं की गई और छिन्न भिन्न करने की शक्तियां बढ़ती और मजबूत होती गईं। सातवीं शताब्दी के मध्य से पांच सौ साल तक उत्तरीय भारत छोटी २ जातियों के पारस्परिक युद्ध का क्षेत्र बना रहा। छोटे २ राजाओं के धावे, लूट मार, छीनने, नष्ट करने और मरने या मारने से समस्त उत्तरीय और मध्य भारत कष्ट से पीड़ित होता रहा और दक्षिण भारत इस सब से अलग रहा जहांकि काले आदि-निवासी विना आर्य रक्तमें मिले हुऐ अपने आप झगड़ते लड़ते रहे और भूत प्रेत पूजते रहे और जब हिन्दू प्रचारक दक्षिण में गये तो उन्होंने अपने देवताओं के अतिरिक्त उनके भूत प्रेत भी अपने धर्म में सम्मिलित कर लिये।

तामिल जाति ने कला कौशल में बड़ी उन्नति की और उन्होंने ग्राम--शासन की अद्भुत प्रथा स्थापित करली पर यह सब बारहवीं शताब्दी के अन्त में नष्ट कर दी गईं और उत्तर और दक्षिण के अनन्त युद्धों और शासकों के वंश बदलने से चुङ्गी, नगर, प्रजा तन्त्र शासन अथवा और कोई राजनीतिक उन्नति न हो सकी। प्रत्येक प्र देश सदा के लिये एक स्वेच्छाचारी के पैरों नीचे आ पड़ता था जोकि अपने थोड़े से राज्यकाल में आदमियों के झुण्ड पर उस समय तक मनमानी करता था जब तक दूसरा स्वेच्छाचारी उसे खींच कर बाहर न डाल देता था।

सर टी० डब्लू० होल्डरनेस ने अपनी "भारतवर्ष के मनुष्य और उनकी समस्यायें" नामक पुस्तक में लिखा है कि सन् १००० से पांच सौ साल तक भयङ्कर और लालची तुर्क, अफगान

और मंगोल एक दूसरे के बाद आते रहे और देश पर प्रभुत्व पाने के लिये लड़ते रहे। इसके अन्त में बावर ने सन् १५२६ में मुगल साम्राज्य स्थापित किया और उसके दो सौ वर्ष तक भारत के द्वार वन्द रहे और वह उस वंश के योग्य शासकों के अधीन रहा" इसके बाद होल्डरनेस दूसरे पृष्ठ में कहता है "मुगल साम्राज्य.........साधारण स्वेच्छाचार शासन की भांति ही था। वह अनुत्तरदायित्व व्यक्तिगत सरकार के रूप में और भारतवर्ष के लिये पुरानों के स्थान में नये विजेताओं का स्थानान्तर मात्र था। इस्लाम धर्म की बाढ़ रोकने के लिये दक्षिण में विजयनगर का हिन्दू साम्राज्य स्थापित हुआ। उसके शासकों ने एक वड़ा नगर वसाया और वे अधाधुन्ध भोग विलास में रहने लगे। पर यहां भी समस्त भारतवर्ष के अनुसार प्रजा के प्रपीड़न से राजाओं और सरदारों का धन वैभव एकत्रित होता था और उनकी पतन पूर्ण आधीनता पर ही राज्य का अस्तित्व सम्भव था। सन् १५६५ मे यह पड़ोसी मुसलमानी राज्यों के एक ही प्रभाव से ढह गया और विजयनगर पत्थरों के एक ढेर में परिणित हो गया।

फिर भी मुगल वंश के प्रारम्भिक सम्राटों ने पुराने धर्म के प्रति सहनशीलता प्रकट की और अकबर ने राजपूत कन्याओं के साथ विवाह भी किया पर तो भी वे विजेताओं अथवा विदेशियों की भांति शासन करते थे और इस बात की सदैव चेष्टा करते थे कि मुसलमान हिन्दुओं से सदैव सवल बने रहें। इसके बाद औरङ्गजेब का शासन आया जो मूर्ति पूजा सहन नहीं कर सकता था, उसने मन्दिर और मूर्ति ढाईं, अत्याचार किये यहां तक कि दक्षिण के नीच जाति वाले महाराष्ट्र गुस्से में भर गये। जब कि औरङ्गजेब ने अधिक शक्ति और धन की तृष्णा में दक्षिण के छोटे छोटे मुसलमानी राज्यों पर भी आक्रमण किया तब महाराष्ट्रों ने

देश की रक्षा की आड़में अपने स्वार्थ लिये देश को लूटा, नष्ट किया और हत्याकांड मचा दिया। औरंगजेबके पचाल साल के शासन के बाद मुगल साम्राज्य इतना निर्बल होगया था कि महाराष्ट्रोंके झुण्ड के झुण्ड अपने सरदार के आधीन रहकर लूट मार करने लगे और भारतवर्ष में उनकी ही तूती बोलने लगी। इसके बाद परसियन और फिर अफगान लोग आये और उन्होंने सन् १७६१ की अन्तिम लड़ाई में महाराष्ट्रों को मार कर दक्षिण की ओर हांक दिया।

इस थोड़े से पुराने सरकारी कर्मचारियों द्वारा लिखे इतिहास में केवल छोटे २ राजाओं और शासकों का ही हाल है पर उनमें प्रजा की स्थिति का बहुत ही कम वर्णन है। इन हालों से केवल यह मालूम होता है कि शासक, वह हिन्दू हों या मुसलमान, उनके लालच पर प्रजा को बलिदान होना पड़ता था। भूखे, नंगे, निर्धन ग्रामीण सिपाहियों की भीड़ों से पददलित होते थे।

ट्रेविल्ज ओफ पीटर मन्डी में लिखा है कि "गुलामों के रखने में प्रायः कुछ व्यय नहीं होता इसलिये अमीरों के घरों में वे बहुत होते हैं।" "व्यापारी आराम से रहने की, आराम से खाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे और अपना धन गहरा जमीन में गाढ़ कर रखते थे क्योंकि तनिक भी मालुम हो जाने से उसे छिपी हुई जगह बताने के लिये पीड़ित किया जाता था। गांव के लोग ही उत्पादक शक्ति थे और उनकी सब उपज उनकी खास जरूरतों के लिये छोड़ कर सब राजा के कोप में आ जाती थी और उसका व्यय करना उन थोड़े विदेशी शासकों के हाथ में ही रहता था।

पुल, सड़कें बहुत ही कम थीं जिससे देश के भिन्न २ प्रदेशों में माल आ जा नहीं सकता था। न शिक्षा, न चिकित्सा, न न्यायालयमें रक्षा करने ही का प्रबन्ध था। कभी कभी

शासक और मन्त्रीगण कागज पर बड़ी बड़ी स्कीम बनाते थे जो कागज पर ही लिखी रह जाती थीं और यदि चलाई भी जाती थीं तो आगे की सन्तान उसे उड़ा मिटा कर रख देती थी। हालैंड निवासी पालसारेट जो सन् ११२० में आया था अपने सात वर्ष के अनुभव से लिखता है कि कानूनों की बहुत ही कम पाबन्दी की जाती थी क्योंकि शासन पूर्णतया स्वेच्छाचारी शासकोंके हाथमें था। उनकी धर्म, नीतिमें यही है कि हाथकेलिये हाथ, आंखके लिये आंख, दांत के लिये दांत। पर कौन राजगुरु के विरुद्ध कुछ कह सकता है और शासक से कौन यह पूछने का साहस कर सकता है "आप इस तरह या उस तरह इन पर शासन क्यों करते हैं? जब कि हमारी व्यवस्था यह कहती है" प्रत्येक नगर में न्याय के राजसी न्यायालय है.........पर हमें उस मनुष्य के लिये खेद ही होगा जिसे इन वास्तिविक "अन्यायाधीशों" के सामने निर्णय के लिये आना पड़े, उनकी आंखों में से लालच टपक रहा है। लोभ से उनके मुंह में भेड़िये की भांति पानी भरा रहता है, गरीबों से रोटी छीनने के लिये उनके पेट में भूख की ज्वाला जला करती है। हर एक हाथ फैलाये खड़ा रहता है और बिना दिये हुये कोई भी दया की आशा नहीं कर सकता।............ बादशाह जहांगीर केवल मैदान या खुले चौरस्तों के ही सम्राट समझे जाते हैं क्योंकि आप बहुत से स्थानों में या तो केवल शक्तिशाली मनुष्यों के झुण्ड के साथ ही आ सकते हैं या विद्रोहियों को कर देकर और उनकी संख्या प्रायः उतनी ही है जितनी प्रज जन की। बड़े नगरों को ही ले लीजिये सूरत में राजा पीपला की सेनाने नगर को उजाड़ कर दिया, गांवों को जलाया और आदमियों को मारा। इसी तरह अहमदाबाद, बुरहनपुर, आगरा, देहली, लाहोर और अन्य नगरों में चोर और डांकू शत्रुओं की तरह खुल्लमखुल्ला चढ़ कर आते थे। यह

शासकों को चुप रहने के लिये घूंस देते हैं और सेना रखने के स्थान में वे अपने महलों को सुन्दर स्त्रियों से सुशोभित करते हैं और उनकी दीवालों के अन्दर ही संसार का सारा विलास-गृह मालुम पड़ता है। उसने कितनी जगह वैभवपूर्ण और सर्वेसर्वा शासकों और अमीरों और साधारण लोगोंकी आधीनता और निर्धनता-इतनी निर्धनता और दुर्भाग्य कि उन्हें अतीव दीनता और संताप का घर कहा जा सके-दोनों की इस भयङ्कर विभिन्नता पर लिखा है। भाग्य वाद और जाति पांति पर वह लिखता है "-लोग यह मान कर कि उनके भाग्य में यही लिखा है सन्तोष से सब कुछ सहन कर लेते हैं और कठिनता से ही कोई चेष्टा करता है क्योंकि सीढ़ी जिससे वे ऊपर चढ़ सकें प्राप्त करना मुश्किल है क्योंकि शिल्पकारियों की सन्तान उसी जीविका को ग्रहण कर सकती है जिसे उसके बाप दादे करते आये हैं और न वे दूसरी जातियों में विवाह ही कर सकते हैं। शिल्पकारों के लिये दो बलाएं हैं एक तो कम मजदूरी..................और दूसरे शासक, सरदार और दीवान जिनमें यदि किसी को किसी शिल्पकार की आवश्यकता होती है तो उस आदमी से यह नहीं पूछा जाता है कि वह आना चाहता है या नहीं वरन् उसे घर पर या गली में पकड़ लिया जाता है और यदि वह कोई चूं चां करे तो उसकी अच्छी तरह मरम्मत की जाती है और शाम को उसे आधी मजदूरी दी जाती है या बिलकुल नहीं दी जाती।"

फ्रान्सीसी यात्री बरनियर ने लिखा है "जमीन को उपजाऊ बनाने और पानी वगैरह के लिये कुए और नहरें बनाने की बहुत कम चेष्टा की जाती है क्योंकि किसान को इस बात का सदैव भय रहता है कि कल न जाने कौन अत्याचारी शासक बन बैठे और मेरे पास जो कुछ है उसे छीन ले। जमीदारों को भी यही भय

रहता है कि वह इलाका न जाने उनसे कब छीन लिया जाय इस लिये वह भूमि की उन्नति करने के स्थान में अधिक से अधिक रुपया खींचने की कोशिश करते थे। इस बुरी शासन प्रणाली के कारण कोई ऐसा नगर या वस्ती नहीं है जो कभी ऊजड़ न भी हुआ हो तो भी जहां अवनति के चिन्ह न हों। देश दरबार और सेना के अंधाधुन्ध व्ययके कारण देशको नष्ट किया जा रहा है।"

अब भारत में योरोपीय शक्तियों के इतिहास को भी संक्षिप्त में बताना अनुचित न होगा। सन् १५५६ में पोर्चुगीज लोगों की प्रायद्वीप के पश्चिमीय किनारों पर(गोवा पर) जो कि उन्होंने दक्षिणके मुसलमानी राज्योंसे लिया था जड़ जमगई थी और किले बना लिये थे पर उनकी निर्दयता और व्यभिचारके कारण उनका अन्त होगया और गोवा को छोड़कर कुल प्रदेश डच लोगों के हाथ में आगया। पूर्वीय देशों के व्यापार के लिये अंगरेज और डच दोनों ही व्यापारी इच्छुक थे। अंगरेज व्यापारियों ने महारानी एलिजाबेथ और मुगल सम्राट से अधिकार पत्र और रियायतें प्राप्त करके समय २ पर पश्चिमीय किनारों पर व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर दिये और उन्होंने पहिले पहिल एक हिन्दू राजा से वह जमीन जहां कि अब मद्रास नगर है किराये पर ली। फ्रान्सीसी व्यापारी भी भारत से व्यापार करने के इच्छुक थे और सत्तरहवीं शताब्दी के अन्तिम पचास वर्षों में दक्षिणीय किनारों पर उन्होंने अड्डे जमा लिये पर योरपमें जो प्रतिद्वन्द्वता चल रही थी और फ्रान्सीसियों की आकांक्षा के कारण शीघ्र ही दोनों जातियों में षड्यन्त्रों की रचनाएँ होने लगीं पर यह प्रतिद्वन्द्वता, जो सन् १७४८ में फ्रान्सीसियों के मद्रास लेने के समय से प्रारम्भ हुई और सन् १७६१ में जब कि फ्रान्सीसियों ने पांडिचेरी के घेरे में हार स्वीकार कर ली, अन्त हो गई।

प्रारम्भ में अंगरेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनीके पास मद्रास, वम्बई द्वीप और दो चार जगह वहुत थोड़ा प्रदेश था पर सम्राट् औरङ्गजेव के मरते ही देश में अराजकता और लूट मार फैल गई और कम्पनो को अपनी रक्षा के लिये किले वनाने पड़े और योरोपीय और हिन्दुस्तानी सेना रखनी पड़ी। सन् १७८४ में ब्रिटिश सरकार ने कानून वना कर कम्पनी के शासन में अपनी देख रेख प्रारम्भ कर दी और उसकी सहायता से कम्पनी डाकुओं के दल,लुटेरे सरदार और पुराने मुगल साम्राज्यके सेनापतियों से, जो कि मधुमक्खियों की तरह नये राज्य और लूट की तलाश में भिनभिना रहे थे, पुराने राज्यवंशों की रक्षा करने और देश मे शान्ति स्थापित करने में बड़ा काम किया और यदि इन लड़ाइयों में कोई देश उनके पल्ले पड़ गया तो वह भी अधिकार मे लेकर देश को एक सूत्रमें वांधने की चेष्टा की। जव कि देश की स्थिति कावू में आ गई तव उन्होंने सभ्य शासन प्रणाली स्थापित की और न्याय, शान्ति और व्यवस्था, जो कि एक हजार वर्ष से देश मे लोप हो चुकी थी, स्थापित की। माना कि कम्पनी के शासकों ने गलतियां भी कीं पर इन सवका परिणाम जरा भी वुरा नहीं हुआ और कम्पनी ने ठग, लुटेरे, सती प्रथा, कोढ़ियों को ज़िन्दा जला देना आदि में महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

सन् १७८५ में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने घोषणा की जिसका आशय यह था कि सव अंग्रेजी राज्य की प्रजाको विना किसी जाति पांत और धार्मिक भेद के समान अधिकार हैं। जाति पांत में जकड़े हुए और अत्याचार पीड़ित पर पुराने ख्याल के भारतवर्ष के लिये इसने गोले का काम किया।

सन् १८४५ और सन् १८५७ के विद्रोहों के वाद सन् १८५८ में ब्रिटिश पार्लियामेण्टने इस द्वैधा शासन का अन्त करके शासन

अपने हाथ में ले लिया और तब बूढ़ी रोगिणी, मलीन और लुटी हुई भारतमाता दूसरे सिरे से खड़ी हुई और उसने अपनी अंधी आंखें अपने ऊपर फहराते हुये विचित्र झण्डे की ओर फेंकीं। उसे पहले की भांति अब भी शासकों में विश्वास नहीं है। उसे इतने समय के पीड़न और दासत्व के बाद कैसे विश्वास या आशा हो कि उसके वर्त्तमान स्वामी उसके लिये संगठनात्मक सेवाएँ, प्रजातन्त्र वाद और सुख देने के लिये आये?



तेईसवां-प्रकरण



शासनसुधार

ब्रिटेन की प्रतिनिधि सरकार ब्रिटिश पार्लियामेण्ट सेक्रेटरी आफ॰ स्टेट द्वारा जिसका दफ्तर लन्दन में है भारत पर शासन करती है। भारतवर्ष में सर्वोपारि शासक गवर्नर जनरल-इन-कौंसिल अथवा उसका अधिक प्रचलित नाम भारत सरकार है और उसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा होती है। इसी प्रकार नियुक्त की हुई कौंसिल में सात विभाग होते हैं मुख्य सेनाध्यक्ष,गृह-सचिव, अर्थ-सचिव, रेल और व्यापार सचिव, शिक्षा-स्वास्थ्य, उद्योग और मजदूर और न्याय के सचिव जिनमें से अन्तिम तीन भारतवासी हैं। केन्द्रीय सरकार की दो सभाएं हैं एक कौंसिल आफ स्टेट और दूसरी लेजिस्लेटिव एसेम्बली। कौंसिल आफ स्टेट में ६० सदस्य होते हैं जिनमें से ३४ चुने हुए और २६, जिनमें २० से अधिक सरकारी कर्मचारी न हों, सरकार द्वारा चुने जाते हैं।

व्यवस्थापक सभा में १४४ सदस्य हैं जिनमें से १०३ सर्व साधारण द्वारा चुने हुए होते हैं और बाकी के ४१ जिनमें २६ सरकारी कर्मचारी होने चाहिये और बाकी के लघुमत वालों के हित की रक्षा के लिये सरकार द्वारा चुने जाते हैं। देश भिन्न २ प्रान्तोंमें विभक्त है जिनका शासनाधिकार वहां के गवर्नर और कौंसिल के हाथ में होता है और जो प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के सहयोग से कार्य करता है, जिनमें कम से कम ७० प्रतिशत

सर्वसाधारण द्वारा चुने हुए सदस्य होते हैं। भिन्न २ मतों और धर्मों के मतानुसार चुनाव होने के लिये पृथक २ जगह नियुक्त हैं। उदाहरणतया मदरास प्रान्त में इस तरह विभक्त हैं:—

गैर मुस्लिम (जिनमें बुद्ध, जैन ओर हिन्दू आदि सम्मिलित हैं)	६५
मुसलमान	१३
ईसाई	५
योरोपियन	१
जमींदार	६
विश्वविद्यालय	१
उद्योग धन्धे	६

मताधिकार की योग्यता प्रान्तों में प्रथक २ है पर बहुधा वह कम से कम मिलकियत के आधार पर ही रक्खी गई है। इस प्रकार मत देने का अधिकार प्रायः ७५ लाख आदमियों को प्राप्त हो गया है और प्रायः सब प्रांतों को अधिकार दे दिया गया है कि वह अपने प्रान्त की स्त्रियों को भी यदि चाहें तो मताधिकार दे सकें। भारतवासियों को शासन कार्य में शिक्षा देने के लिये उन्हें कुछ विभाग सौंप दिये गये हैं और इस प्रकार प्रान्तीय सरकार दो शाखा वाली मशीनें बन गई हैं। एक शाखा गवर्नर और उसकी एक्जीक्यूटिव कौंसिल है और दूसरी शाखा गवर्नर और विभागों के मन्त्री हैं। सरकार चुने हुए सदस्यों में से मंत्री नियुक्त करती है।

स्थानान्तरित विषय अंगरेजों ने अपने हाथ से निकाल कर हिन्दुस्तानियों को दे दिये हैं और इस प्रयोग का अभिप्राय है कि यदि इसमें सफलता प्राप्त हो तो इस सूची को बढ़ा दिया

जाय और यदि असफलता हो तो गवर्नर-इन-कौंसिल एक या अधिक स्थानान्तरित विषयों को अपने हाथमें ले ले। स्थानान्तरित विषय अभी यह हैं—शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, पब्लिक वर्क्स, रेल और नहरों को छोड़ कर अन्य उद्योग धन्धों की उन्नति, राज्य-कर, कृषि, चुङ्गी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड। सरकार ने कानून और व्यवस्था, रक्षा, अर्थ, मालगुजारी वगैरह अपने हाथ में रक्खे हैं। कौंसिल के सामने बजट रक्खे जाते हैं, स्थानान्तरित विषयों में धन का उनको पूर्ण अधिकार है पर यदि स्थायी विषयों के लिये गवर्नर यह देखे कि उसके उत्तरदायित्व के पूर्ण करने के लिये कोई व्यय आवश्यक है तो कौंसिल के मना करने पर भी दे सकता है। वह एक कानून को नामंजूर कर सकता है या वायसराय के विचार के लिये रख सकता है और किसी रिजर्व विषय का कोई भी कानून रद्द कर सकता है। केन्द्रीय भारतीय व्यवस्थापक सभा को पार्लियामेण्ट के रक्षण के अन्तर्गत 'आंग्ल भारत में सब मनुष्यों, न्यायालयों, सब स्थानों और चीजों के लिये, रियासतों में आंग्ल-कर्मचारी और प्रजा के लिये, सम्राट की प्रवासी भारतीय प्रजा और कर्मचारी और सैनिकों के लिये वह चाहे भी जहां हो, कानून' बनाने का अधिकार है पर मालगुजारी या ऋण, धर्म, सैना, विदेशीय सम्बन्ध या प्रान्तीय सरकारों के विषय में कानून बनाने के लिये वायसराय की मंजूरी आवश्यक है। व्यवस्थापक सभा के सामने बजट रक्खा जाता है और कुछ मदों को छोड़ कर उस पर उसकी स्वीकृति ली जाती है पर किसी भी विषय को वायसराय और सम्राट को विटो यानी अस्वीकृति करने का अधिकार है और वायसराय दोनों सभाओं में से किसी से भी बिना पूछे किसी मसौदे को कानून बना सकता है।

यह शासनसुधार भारतवासियों के लिये नये, विदेशीय और उनकी शक्ति से बाहर हैं जिन्हें अंगरेजी शासकों ने उदारता

और जल्दबाजी के आवेग में उनके ऊपर लाद दिये हैं। केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में बैठ कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों एक कमरे में छोटे और दुष्ट लड़के एकत्रित हुये हों और अकस्मात् जिनके पल्ले एक मूल्यवान घड़ी पड़ गई हो। वे उसमें अपनी उंगली कोंचने, पहिये निकालने स्प्रिंग से खेलने और ज्वेल निकाल डालने के लिये लड़ झगड़ रहे हैं। उन्हें उस यंत्र या समय का कुछ भी ख्याल नहीं है और जब शिक्षक उन्हें बतलाता है कि चाबी कैसे दो तो वे पीछे हटते हैं और दांत निपोरते हैं और कामों में अपनी पैंड़ मारते हैं।

इनका इस कार्य से जो सम्बन्ध है वह बिलकुल बनावटी है। वे प्रजातन्त्र प्रतिनिधित्व का शब्द जाल पूरते हैं पर इस वाक्य में जो अर्थ छिपा है उससे वे बिलकुल अज्ञान हैं। स्वेच्छाचार से नागरिक गुण उत्पन्न नहीं होते और भारतवर्ष में अंगरेजों से पहले स्वेच्छाचारियों के शासन के अतिरिक्त कोई शासन नहीं था। अंगरेजों के शासन से एक नई श्रेणी पैदा हो गई है जो पहले कभी नहीं थी वह है मध्य श्रेणी। लेकिन यह मध्य श्रेणी-यह वकील और पेशे वाले लोग-जाति पांति और आवागमन के भावों से, जोकि प्रजातन्त्र वाद के पूर्णतया विरोधी हैं, उसी तरह जकड़े हुये हैं जैसे पांच सौ साल पहले के उनके पूर्वज। एक गांव का मुखिया इन 'प्रतिनिधियों' से एक सरकार के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यों को अधिक अच्छी तरह समझता है और अनुभव करता है।

सन् १९२६ के शीत काल में मैंने देहली में व्यवस्थापक सभा में वाद विवाद सुना। घंटे के बाद घंटे और दिन के बाद दिन स्वराजी सदस्य झगड़ों और रोड़े अटकाने में नष्ट कर रहे थे और बाकी के सदस्य, कुछ उत्तरीय देश के स्पष्ट वादी

सदस्यों को छोड़ कर चुपचाप करुणा पूर्ण मूर्ति बने बैठे रहते थे। सरकारके छोटे २ प्रस्ताव स्वराजियों द्वारा भयानक मन्तव्य में समझाये जाते थे और उनके मुख से केवल तुच्छ और अपशब्द ही सुनाई देते थे "हम तुम पर विश्वास नहीं करते" "हम जानते हैं तुम्हारे मन्तव्य बुरे हैं, हम तुम्हारी त्रिशिरा शैतानी सरकार से कुछ आशा नहीं करते।" सरकारी सदस्य सदैव सन्तोष, सहनशीलता और सभ्यता में उनका उत्तर देते थे। उनमें एक भी दफा भय, उत्तेजना या खिजलाहट के भाव नहीं आये।

मैंने एक भारतीय सदस्य से जो ब्रिटेन को बिलकुल पसन्द नहीं करता था एक दिन पूंछा 'तुम्हारे साथी सदस्य सरकार पर भारी दोष लगाते हैं। उसकी ईमानदारी में सन्देह करते हैं। "विभाजित और शासन" के सिद्धान्त पर हिन्दु और मुसलमानों को 'भिड़ाने का अपराध' उसके सर मढ़ते हैं वे कहते हैं कि वह भारतीय आकांक्षाओं को पैरों तले कुचलती है।' 'हां! वे यह सब कहते और इससे भी ज्यादा कहते हैं' " लेकिन वास्तव में क्या उनका यही मन्तक है ?" उसने जवाब दिया "यह कैसे हो सकता है, एक भी सदस्य ऐसी कोई भी बात पर हृदय में विश्वास नहीं करता।"

सम्राट ने भारतीय व्यवस्थापक सभाएं स्थापित करते समय अपना आदेश दिया था जिसमें नवीन कौंसिलों के सदस्यों को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखने के लिये कहा था परन्तु इस सब का उनके लिये क्या मूल्य था जिनको यह बातें सम्बोधित की गई थीं ? वे अपने और अभागी भारत माता में क्या सम्बन्ध अनुभव करते थे ? अपने कार्य के लिये अपनी योग्यता दिखाने और आगे प्राप्त करने के लिये उनका कर्तव्य क्या था ?

ब्रिटिश शासन के इतिहास से यह प्रगट होता है कि शीघ्रतम उन्नति की चेष्टा के मार्ग में रोड़े अटकाये जाते हैं,

यह देश के लिये केवल दुर्भाग्य की ही बात थी कि शासन-सुधारों का जन्म उस समय हुआ जब श्रीयुत गांधी के मौसमी प्रवाह के कारण वे असहयोग के गोले से पूर्ण शक्ति से उन पर प्रहार कर सकते थे।

शासन सुधारों का सारा ढांचा मतदाताओं पर निर्भर है पर कठिनाई यह है कि यह ढांचा हवा में लटका हुआ है पर जड़ जिस पर यह स्थापित होने को है वास्तव में अभी उसका अस्तित्व ही नहीं है। मतदाता-शब्द के वास्तविक अर्थ में-भारत में हैं ही नहीं और न वर्तमान आधार पर पीढ़ियों तक हो ही सकते हैं। भारतवर्ष के चुने हुये लोगों में उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य का ज्ञान ही नहीं है।

मतदाताओं का न होने का एक कारण यह है कि केवल ८ प्रतिशत ही ऐसे लोग हैं जो कुछ भी पढ़ सकते हैं और वे भी नगरों में रहते हैं और गांवों में सर्वसाधारण के पास छपे हुये शब्द पहुंचते ही नहीं। इन अशिक्षित किसानों और मजदूरों में राजनीतिक खेल से कोई दिलचस्पी नहीं है और न उनकी आंखें वह जो सदैह देखते हैं उससे आगे पहुंचती हैं। नगर के राजनीतिज्ञ केवल चुनाव या 'अहिंसात्मक' आन्दोलनों के अवसर पर ही इनके पास आते हैं और सरकार की बुराई सुना कर उन्हें विद्रोह में खड़ा करते हैं। अभी जब सरकार का पहिया रोकने के लिये स्वराजी सदस्य कौंसिल से निकल आये थे उनमें से एक ने भी अपने मतदाताओं से परामर्श नहीं लिया।

भारतवासियों के हालात मालुम करते समय अपने ध्यान में यह रखना बुद्धिमानी है कि वे सत्य की परिभाषा और मूल्य क्या समझते हैं। एक भारतीय वेदान्तिक भाव से सत्य

की खोज का प्रेमी हो और बहुत सी बातों में पक्षपातहीन दृष्टि से कार्य करे परन्तु फिर भी अपने स्पष्ट भाषण के बीच २ में ऐसी बातें मिला देगा जो यथार्थ नहीं है।

मैंने लाखों मनुष्यों के एक गुरु और आत्मवादी से इस विषय में पूछा तो उसने उत्तर दिया 'सत्य क्या है? सत्य और मिथ्या अपृथक हैं। आप जिस स्थिति में हैं, उसमें जो बातें सहायक होती हैं उन्हें आप अच्छा कहते हैं। वह बात कहना जिससे परिणाम अच्छा हो झूठ नहीं है। मैं भले बुरे में विभिन्नता नहीं देखता। हर एक चीज अच्छी है, कोई भी वस्तु स्वमेव में बुरी नहीं है। कार्य नहीं बल्कि मन्तव्य देखा जाता है।'

जैसा कि हिन्दुओं के आत्मवाद का ढर्रा है, झूंठ में पकड़े जाना उसके लिय लज्जा जनक नहीं है। आप उसे झूंठ में पकड़ कर अप्रसन्न या दुखी नहीं करते। उसका वस्तुस्थिति में आचार उतना ही है जितना कि शतरंज की चाल मे।



चौबीसवां—प्रकरण

भारतवर्ष के राजा

अब तक ब्रिटिश भारत के विषय में ही कहा गया है पर भारतीय साम्राज्य में ब्रिटिश भारत है और भारतीय रियासतें हैं। भारतीय साम्राज्य की १,८०५, ३३२ वर्ग मील भूमि में ३९ प्रतिशत भूमि भारतीय रियासतों की है और साम्राज्य की कुल जन संख्या ३१८,९४२,४८० में से २३ प्रतिशत अर्थात ७२,०००,००० मनुष्य रियासतों में रहते हैं। २० मील से लेकर इतनी बड़ी रियासतें हैं जितना इटली देश। उसका शासन उसका राजा अथवा उसकी नाबालिगी में रीजेन्ट करता है। इनमें से कुछ हिंदू हैं, कुछ मुसलमान हैं, कुछ शिक्ख। सन् १८५८ की घोषणामें महारानीने इस बातकी घोषणाकी कि अंगरेजों की नीति न केवल यही है कि ब्रिटिशभारत में अब अधिक राज्य न मिलाए जांय वरन् इन रियासतों को मानकर उन्हें अब अभय करती है। राजा लोग अपनी शासन प्रणाली निश्चय करने, कर लगाने और अपने राज्य में जीवन मरण का निश्चय करने को स्वतन्त्र हैं। किसी विशेष स्थिति के अतिरिक्त भीतरी मामलातों में अंगरेज सरकार हस्तक्षेप नहीं करती पर सार्वदेशिक और विदेशीय मामले उसी के हाथ में हैं। प्रत्येक राज्य में राजा को सलाह देने के लिये एक रेजीडेन्ट होता है। देहली में वर्ष में एक बार वायसराय की अध्यक्षता में नरेश परिषद् अन्तर्देशीय विषयों पर वाद-विवाद करने के लिये होती है। यह सभा शानदार, शाही और

महान होती है और यद्यपि शान्ति के समय में इसके सामने बहुत कम काम होता है तब भी इससे कम लाभ नहीं होता।

भारतीय रियासतों में जाने से शासन की वास्तविक स्थिति का अनुभव करना बड़ा कठिन है। एक मनुष्य राजा का अतिथि होता है और उसकी शान से खातिर होती है। देखने योग्य बाते दिखाई जाती हैं और वह प्राचीन और वर्त्तमान उन्नति प्राप्त बाते देखकर कहता है "चित्र के दोष किधर हैं?"

फिर भी यह स्पष्ट मालूम होता है कि कुछ रियासतों का शासन अच्छा है, कुछ का साधारण है और कुछ का खराब है। यह अन्तिम अम्बर मे रक्खी हुई मक्खी के भांति 'सतयुग' का प्रदर्शन करती हैं। उनका शाही जीवन और प्रजा का जीवन अरेबियन नायट के अध्यायों की भांति हैं। एक ओर क्रोध, द्वेष, हिंसा, एक चहेते मन्त्री का एक ही रात में आलोप हो जाना, घोर दण्ड, विष देकर हत्या करना और जनान खाने के षडयन्त्र हैं और दूसरी ओर हैं मृतक प्रजा की उस अत्याचार के प्रति विरोध तक प्रकट करने की असमर्थता, जो उन्हें पीसे डाल रहा है।

प्राचीन राजा और प्रजा का यही सम्बन्ध था जैसा कि एक भारी पेड़ का चूसी हुई और निर्बल जड़ों से। वह अपनी प्रजा को बिना कोई प्रतिफल दिये हुए निचोड़ता था। ऐसे राजा के आधीन जो अत्यन्त अत्याचारी न हो प्रजा सन्तोष से आज रह सकती है क्योंकि उनके सारे ऐतिहासिक अनुभव से उन्हें अस्तित्व की अन्य कोई प्रणाली विदित ही नहीं है और वे जन्म दिनों, शादियों और धार्मिक कृत्यों पर किये हुए, जिनके कि उनके राजा इतने आदी हैं, जलूसों और शानदार दृश्यों को गौरव से देखते हैं जोकि ब्रिटिश शासन में इसलिये नहीं होते कि प्रजा पर कर का अधिक

बोझ न पड़े पर फिर भी अब साधारणतया प्रवृत्ति ब्रिटिश शासन के समान उन्नति करने की ओर है अथवा जब राजा अयोग्य होने के कारण हटाया जाता है और शासन रेजीडेन्ट के हाथ में आ जाता है तब उन्नति का अवलम्बन किया जाता है। उदाहरणतया एक राजा की नाबालिगी में जो बीस वर्ष तक रही, इस समय में अंगरेज रीजेन्ट ने शासन किया और पहली बार राज्य की आय प्रजा के हित में लगाई गई, स्कूल खोले गये, अच्छी सड़कें और पुल बनाये गये, अस्पताल खोला गया और न्यायालय बनाये गये पर इस सुखमय शासन काल में भी प्रजा उस दिन के लिये घड़ियां गिनती थी जब उनका राजा गद्दी पर बैठकर शासन संभाल ले। अन्त में वह समय आया और वेश्याओं तथा आकांक्षा पूर्ण रिश्तेदारों ने नवयुवक राजा पर भूत फेर दिया। सब करा धरा गुड़ गोबर होगया। योग्य मनुष्यों को निकाल कर निकम्मे आदमी उनकी जगह रख दिये गये। राजा के विषय भोग के लिये प्रजा को निचोड़ा जाने लगा और अन्त में वे रेसीजेन्ट के पास आये और कहा "हमे राजा के आने और शासन करने की अभिलाषा थी पर हमें यह नहीं मालूम था कि वह ऐसा होगा। अब हम अधिक नहीं सह सकते। अब साहब आजांय और हमें न्याय, शांति और सुखमय जीवन दें जो पहले था" लोग अब विचार करने लगे थे।

नवयुवक राजा को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सब ही उससे लाभ उठाना चाहते हैं और अति विषय भोग, व्यभिचार, हठ का प्राचीन मार्ग उसके सामने रहता है परन्तु कोई २ राजामाता बुद्धिमान और शक्तिशाली होती हैं और अपने पुत्र की रक्षा कर लेती। कभी कभी राज्याधिकारी को विलायत या नरेश-विद्यालय में पढ़ने भेज दिया जाता है जहां उन पर यहा

अच्छा प्रभाव पड़ता है। मैसोर नरेश इसका एक उदाहरण है वे विलायतसे शिक्षा प्राप्त करके आये और उन्होंने अपने राज्यकी बड़ी उन्नति की। मैंशोर नगर में वर्त्तमान ढंग की सुन्दर इमारतें, पार्क और बगीचे हैं और उसे स्वच्छता और सफाई में एक वर्तमान आदर्श नगर कहा जासकता है। एक औद्योगिक विद्यालय,एक विश्वविद्यालय, बड़ा अस्पताल महान उन्नति के चिन्ह हैं। रियासत की खानें, कृषि और उद्योग धन्धों की तरक्की हो रही है। इसके अतिरिक्त रियासत के स्वास्थ्य और योग्य संचालकों को नियुक्त किये जाने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है

एक सज्जन ने जिसकी सत्यता में सन्देह नहीं किया जा सकता मुझ से एक उपख्यान कहा कि सन् १९२० में जब कि शासन सुधारप्रचलित हुऐथे और यह अफवाह गर्म थी कि अंगरेज भारतवर्ष को छोड़कर जा रहे हैं। वे एक बड़े राजा से मिलने के लिये गये। वहीं उनके दीवान भी बैठे थे और तीनों सज्जन गपशप लड़ाने लगे। दीवान ने कहा "राजा साहब इस बात में विश्वास नहीं करते कि ब्रिटेन भारतवर्ष को छोड़कर जा रहा है लेकिन फिर भी इंगलैड के वर्त्तमान शासनमे सम्भव है उन्हें ऐसी बुरी सलाह दी जाय और यदि अंगरेज चले जांय तो तीन ही महीने बाद सारे बंगाल में एक भी रुपया और एक भी कुंवारी न बचे।"

ऐसा मालूम होता है कि स्वराजी यह भूल जाते हैं कि ज्योंही शासन उनके हाथ मे दे दिया जायगा राजा लोग एक शताब्दी पहले की तरह शक्तिशाली हो जायंगे और हिन्दुस्तानी फौज यदि संगठित रहे भी तो व्यवस्थापक सभा की आज्ञा मे चलने के स्थान में उसका किसी राजा से सहयोग करने की अधिक सम्भावना है।

भारतीय मस्तिष्क ही एकतन्त्र स्वेच्छाचार के सांचे में ढला हुआ है। एक युद्ध का तात्पर्य है राजा का नेतृत्व और लूट-मार। यदि उपरोक्त राजा ब्रिटेन के चले जाने पर बंगाल पर आक्रमण करें तो जनता उन ही के पीछे दौड़ चले पर वे ऐसा कुछ नहीं चाहते वे तो अंगरेजों की छत्रछाया में शान्ति से रहना चाहते हैं जिसमें उन्हें न बड़ी २ फौज़ें रखने की ज़रूरत है और वे रेल, सड़कों पुल, बन्दरगाह, बाजार, तार का उपयोग कर सकते हैं। वे गत महायुद्ध में पूर्ण राजभक्त रहे पर वे किसी भी भारतीय राजनीतिज्ञ को ऐजेन्ट की तरह अपने दरबार में नहीं लेना चाहते। उनमें से एक ने मुझ से कहा "हमारी सन्धि इंगलैंड के बादशाह के साथ है। भारतवर्ष के राजाओं ने उस सरकार से सन्धि नहीं की जिसमें बंगाली बाबू लोग हों। अगर अंगरेज़ यहां हैं तो वे सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में अंगरेज को ही भेजेंगे और ऐसा ही होगा जैसा मित्रों में होता है। अगर अंगरेज चले जाते हैं तो हम राजा लोग यह समझेंगे कि भारतवर्ष में कैसे अपने राज्य का विस्तार करें।"

भारतीय राजनीतिज्ञों का मत जो कि मुझे भारतीयों द्वारा दिये हुये एक भोज में मालुम हुआ वह यह है कि वे उन राजाओं को निकाल बाहर करेंगे।



पच्चीसवां प्रकरण



पुआल में चिनगारी

यदि छः करोड़ अछूतों को भी हिन्दुओं में मान लिया जाय तो ब्रिटिशभारत की आबादी की प्रायः तीन चौथाई आबादी हिन्दू हैं और प्रायः एक चौथाई मुसलमान हैं। इन दोनों के बीच में एक बड़ी खाई है जिससे लड़ाई झगड़े की सदैव सम्भावना बनी रहती है। भारतीय स्थिति में यह 'सब से बड़ी समस्याओं में से एक है।

सन् १८५८ से आगे पचास वर्ष तक तो वे लोग शान्ति से रहे जिसका कारण यह है कि उस समय सिविल सर्विस के अङ्गरेज ही सरकारी न्याय और शासन को चलाते थे जो हिन्दू और मुसलमानों के साथ समान व्यवहार करते थे, इसलिये न्याय और रक्षा की छत्रछाया में न तो हिन्दू मुसलमान झगड़ सकते थे और न कोई धार्मिक जातिगत प्रश्न उठते थे पर सन् १९०९ में हवा फिरी और मिन्टो-मार्ले सुधार पार्लियामेन्ट द्वारा बनाये गये। इसका प्रभाव यह हुआ कि मुसलमान जो कि असंगठित लेकिन शक्की और युद्ध प्रिय प्रकृति के थे सजग हो गये क्योंकि उन्हें स्पष्ट दिखाई दिया कि इन चुनी हुई व्यवस्थापक सभाओं से जो कुछ भी लाभ होगा उससे हिन्दू निःसंदेह मुसलमानों को मार्ग से निकाल फेकेंगे।

इस स्थिति को समझनेके लिये यह स्मरण रखना आवश्यक है कि प्रथमवार मुसलमान धर्म भारतवर्ष में विजेताओं के धर्म की तरह आया और पांच सौ साल तक उसकी तलवार अधिकांश भारतवर्ष पर शासन करती रही और उस समय में परसियन भाषा राज्य की भाषा रही पर मुसलमान जब तक कोई काम मिले पढ़ने लिखने का काम करना पसन्द नहीं करते, इसलिये जहाँ कोई प्रखर बुद्धि और स्मरण शक्ति वाला ब्राह्मण हुआ उसे सरकारी नोकरी मिल जाती थी, इसलिये पांच सौ वर्ष में, जब कि मुसलमान राज्य करते थे, लिखने पढ़ने का अधिकतर कार्य ब्राह्मणों के हाथ में था पर जब राज्य भाषा अङ्गरेजी हुई और उससे जो चीज उगा उसके विषय में हमें यहां विचारना है। कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाँच समिति यह बतलाती है 'सन् १८३७ के कानून और सन् १८४४ का प्रस्ताव' (जिसमें पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतवासियों को सरकारी नोकरियों में तरजीह दी गई है) का परिणाम यह हुआ कि "भद्र लोग" जो कि नोकरी के लिये विदेशी भाषा को पढ़ते थे अब उसी के लिये अङ्गरेजी को पढ़ने लगे। वास्तव में हिन्दुओं ने ही अधिक संख्या में इस नये शिक्षा की सहूलियतों का उपयोग किया। मुसलमानों ने परिवर्तन का घोर विरोध किया जो कि वास्तव में उनके लिये घातक था। अब तक परसियन के ज्ञान से उन्हें बड़ा सुभीता था, यह उनके लिये उनकी सभ्यता की भाषा थी, इसके साथ ... इसके अतिरिक्त

वे अंगरेजी भाषा को ईसाई धर्म की शिक्षा से सम्मलित समझते थे और वे अपने बच्चों को पादरियों के प्रभाव में नहीं डालना चाहते थे। वे स्वाभिमान और धार्मिक जोश के कारण इस कार्य से दूर रहे।

पढ़ा हो या कुपढ़ हो मुसलमान एक ईश्वर को मानने वाला है। खुदा केवल एक है। उसकी मसजिदों में 'मूर्तियाँ नहीं हैं और यद्यपि वह ईसाई मत और ईसा को मान की दृष्टि से देखता है पर त्रिदेवत्व (Trinity) का सिद्धान्त मानना उसके लिये असम्भव है। उसका धार्मिक विश्वास ही उनकी सब से मूल्यवान चीज है और वह कुफ्र का मार्ग उस की भाषा अगरेजी सीख कर नहीं खोल सकते।

जब तक अंगरेज कर्मचारी नगर और ग्रामों के मामलों पर शासन करते रहे तब तक तो स्थिति शान्ति रही पर मिन्टो-मोर्लें सुधार के पहले ही गोले ने परदे को फाड़ डाला और चौकन्ने हुए मुसलमान नेताओं ने जिनका हाथ जंग लगी हुई तलवार पर था अध-खुले नेत्रों से संसार में आपत्ति की घटाओं को देखा और इस तरह उन्होंने पिछड़ी हुई स्थिति में राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया पर फिर भी गांवों और बस्तियों में यह हलचल बहुत कम पहुंची क्योंकि वहां अब भी अंगरेज अफसर ही हिन्दू और मुसलमानों के साथ समान व्यवहार करके शान्ति बनाए हुए थे। इसके बाद सन् १९१९ में सन् १९०९ के सुधारों को बहुत बढ़ा दिया गया और भारतवासियों के हाथ में शासन का बहुत अधिक काम

गया और इस बात का वायदा किया गया कि आगामी दस वर्ष में और भी अधिकार सुधार दिए जायंगे। बस इस समय से शान्ति हवा होगई और सन् १९२९ ज्यों २ समीप आता जा रहा है यह तनातनी बढ़ती जाती है और दोनों प्रतिद्वन्द्वी अधिक अधिकार प्राप्त करने के लिए पैंतरे बदल रहे हैं।

श्रीयुत गान्धी के आन्दोलन में जब कि उन्होंने ब्रिटिश शासन को उलटने के लिए खिलाफत के प्रश्न को अपना लिया एक्यता का प्रथम अभिनय हुआ पर खिलाफत के प्रश्न का ही बहुत जल्दी अन्त हो गया और अब गान्धी-अली का एक भी दृश्य इस भ्रातृत्व की गहराई को बतलाने के लिए काफी है।

मालाबार के किनारों पर पहाड़ों में २० लाख हिन्दुओं में अरब वंश के व्यापारियों और इस देश की स्त्रियों से उत्पन्न हुए मोपला लोग, जिनकी संख्या प्रायः दस लाख है, रहते हैं। यह लोग साफ और स्वच्छ घरों में रहते हैं और बहुधा वे समझदार और रूखे चेहरे वाले होते हैं और मेरे स्वयं अनुभव से मनोरंजक और मिलनसार आदमी हैं पर उनमें धार्मिक जोश है और उनमें धार्मिक उत्तेजना बड़ी जल्दी फैलती है, जिसमें वे काफिरों को मारने के बाद स्वयम् गोली या छुरी से मरने को इच्छुक होते हैं। इन सीधे सादे लोगों को सन् १९२१ में उपरोक्त हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रचारकों ने उत्ते-जित किया कि सरकार इस्लाम के पवित्र स्थानों में हाथ डाल रही है। सरकार खुदा और ईमान की दुश्मन

है और उसे निकाल कर स्वराज्य स्थापित करना चाहिए। मस्जिद से मस्जिद, झोंपड़ी से झोंपड़ी में यह उत्तेजक शब्द फैलने लगे और उनके प्रचारकों का चाहे जो कुछ मतलब रहा हो पर सीधेसादे मोपलाओं के लिए उसका तात्पर्य था 'युद्ध। गान्धी जी यह बात भूल गए कि मोपलाओं के लिए स्वराज्य का मतलब इस्लाम राज्य था जिसमें कोई भी मूर्तिपूजक हिन्दू का जीवित रहना सहन नहीं किया जा सकता था।

इसलिए मोपलाओं ने छिपे २ चाकू, भाले और तलवारों का शस्त्रागार एकत्रित किया और २० अगस्त सन् १९२१ को वे टूट पड़े। पहले तो उन्होंने एक अंगरेज खेतिहर को मारा पर फिर वे जाति गत लड़ाई में भिड़ गए। पहले सड़कें रोक दीं, तार काट दिए, जगह २ पर रेल उखाड़ दीं और इस तरह पहाड़ी प्रदेश में फैले हुए थानों का सम्बन्ध विच्छेद करने के बाद वे बादशाही राज्य और अपने हृदय का मनोवांछित स्वराज्य स्थापित करने के काम में लग गए।

पडोसी हिन्दू यद्यपि उनसे दुगने थे पर उनका मुकाबिला करने में किसी भी तरह समर्थ नहीं थे। पहले हिन्दू स्त्रियों को जबरन् मुसलमान बनाया गया और फिर वे मोपलाओं के घरों में रख दी गईं। कुछ हिन्दुओं से कहा गया कि 'मृत्यु या धर्म परिवर्तन' इन दोनों में से किसी मार्ग को स्वीकार कर लो, कुछ जिन्दा जला दिए गए, कुछ काटकर कुएमें डाल दिए गए, एरनाद ताल्लुके में ही ४०० पुरुष मुसलमान बना डाले गए। छः महीने की चेष्टा के बाद और ३००० मोपलाओं के मर

जाने के बाद फौजें कहीं शान्ति स्थापित कर सकीं। अब हिन्दू अपने दुर्भाग्य को रोने लगे और देवी देवताओं से मनाने लगे कि स्वराज्य का बुरा हो "आह! हमारे दुर्भाग्य को देखो, हम अपवित्र किए गए, हमारा आचार विचार नष्ट हुआ और हम जातिच्युत हुए। क्यों? सब इसलिए कि सर्प स्वराज्य का विष ले कर हम में आ घुसे थे। एक बार देश से अंगरेजों को चले जाने दीजिए और फिर जो विपत्ति हम पर पड़ी है हर हिन्दू बच्चे, स्त्री और पुरुष पर आ पड़ेगी।

इसके अतिरिक्त नर्क का भय भी उनके सामने था, ब्राह्मण पुजारी उन अभागे जीवों से सौ से डेढ़ सौ रुपया की आरमी तक मांग रहे थे। इस संस्कार के अनुसार आंख, कान, मुंह और नाक गौ के गोबर से भरे जाते हैं और फिर गौ के मूत्र से धोए जाते हैं। इसके बाद घी, दूध और दही पीने को दिया जाता है।

इसके छः महीने बाद ही चौरीचौरा का हत्याकाण्ड हुआ। राष्ट्रिय महासभा की कार्य समिति के निर्णय को कार्य रूप में लाने के लिए राष्ट्रिय स्वयम्सेवकों की एक फौज बनाई गई थी।

४ फरवरी सन् १९२१ को राष्ट्रिय स्वयम् सेवकों और अंगरेजों के विरुद्ध उत्तेजित भीड़ ने चौरीचौरा के छोटे से स्टेशन को जहां करीब २१ कान्सटेबिल थे घेर लिया। कुछ को मार डाला और बाकी को घायल करके तेल डाल कर

पञ्जाब में सन् १९१९ के आन्दोलन में कुछ लोगों ने विदेशी महिलाओं को बेइज्जत करने का आन्दोलन उठाया। "गांधी! हम तेरे पीछे चलेंगे और लड़ कर मर जांयगे" "अब किस समय का इंतजार कर रहे हो। यहां बेइज्जत करने के लिए बहुत स्त्रियां हैं। चारों तरफ देश में जाओ और देश को विदेशी महिलाओं से साफ करदो।" ऐसे २ इश्तहार बंटने लगे और सरकार अगर जरा भी चूक जाती तो इतिहास में कुछ अमिट पृष्ठ लिख जाते।

देहली के समीप बुलन्दशहर जिले में सन् १९२४ में गङ्गा की बाढ़ आई। यह बाढ़ बड़ी भयङ्कर थी और गांव के गॉव, मनुष्य और पशु बह गए। कुछ हिन्दू मल्लाह लोगों को डूबनेसे बचाने का काम सोंपा गया और इन लोगों ने इस अवसर का यह लाभ उठाया कि उन्होंने एक भी डूबते हुए मुसलमान को नहीं बचाया। पर मैंने बंगाल के नड़ियाद जिले में एक मुसलमानों के लड़कों का एक स्कूल देखा जिसमें कमिश्नर की सलाह से हिन्दू भी सहायता देते थे।

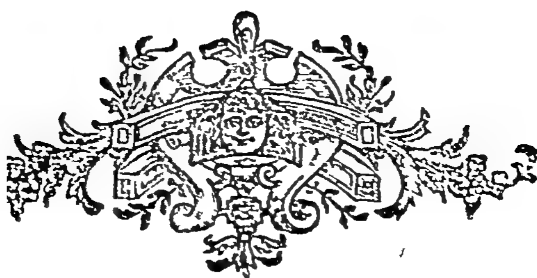
लखनऊ में जब बाग बन रहा था तब एक कोने में हिन्दुओं का एक मन्दिर पाया गया, सरकार ने अपनी नीति के अनुसार उसे सुरक्षित रहने दिया। इस पर मुसलमान भी आये और उन्होंने भी बाग के एक कोने में नमाज़ पढ़ने को जगह मांगी और चुंगी के अधिकारियों ने उनके लिये भी प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद सुधार का समय आया और उसके प्रतिफल स्वरूप मनमुटाव होने लगा। लखनऊ प्राचीन मुसल

मानी राजधानी है और मुसलमानों ने सोचा कि यदि देश का शासन भारतवासियों के हाथ में आने को है तो लखनऊ उन्हें वापिस मिल जाना चाहिये।

इस पर हिन्दू सोचने लगे कि अगर स्वराज्य वास्तव में प्राप्त हो गया तो वह हम लखनऊ के हिन्दुओं को कहां जगह देगा? क्या मुसलमान हमारे स्वामी होंगे? इससे अच्छा तो यह हो कि मौत हमें उठाले। इस पर वह संगठन और चिढ़ाने के अन्य काम करने लगे और विशेषकर उस कोने के मन्दिर में। सूरज डूबने के समय मुसलमानों के प्रार्थना का समय होता है और वे उसी बाग में एक क़तार में बिछौने बिछाकर सच्चे हृदय से प्रार्थना करते हैं। वे हिन्दुओं के किसी प्रकार के विघ्न को सहन नहीं कर सकते, इसलिये उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि वे मन्दिर में पूजाका अन्य कोई ऐसा समय नियुक्त करें जो उनकी प्रार्थना का न हो पर हिन्दुओं ने मुसलमानों की और मुसलमानों ने हिन्दुओं की नहीं मानी और आपस में लड़ने लगे। मुसलमान अधिक मजबूत साबित हुए और उन्होंने मैदान साफ कर दिया। वे मन्दिर को भी साफ करने ही वाले थे कि पुलिस आगई और उसने बचा लिया। इसके बाद भी आपस में रंजिश चलती रही और यदि एक हिन्दू मुसलमान या मुसलमान हिन्दू को गली में पा जाता था तो उसका सर तोड़ दिया जाता था।

अब कमिश्नर को प्रबन्ध करना चाहिये क्योंकि व्यापार नष्ट हो रहा था, छोटी दुकानों के दिवाले निकल रहे थे लोग पर

दूसरे का बहिष्कार कर रहे थे और नये झगड़े होने की प्रत्येक दिन आशङ्का रहती थी। इस पर कमिश्नर ने दोनों तरफ के नेताओं को समझौते के लिये बुलाया। उन्होंने बातों पर बातें कीं पर एक भी अपनी जिद से एक इंच पीछे हटने को तय्यार नहीं था। हिन्दू इस बात पर जोर देते रहे कि सूरज डूबने से पांच मिनट पहले हम अपनी प्रार्थना करना प्रारम्भ करेंगे। पन्द्रह घंटे बहस के बाद यह निश्चय हुआ कि हिन्दू घंटा धीरे से बजावें ताकि उसकी आवाज मुसलमानों तक न पहुंचे।



छब्बीसवां प्रकरण

रसूल के बेटे।

दिसम्बर सन् १९१६ में मुस्लिम लीग हिन्दू और मुसलमानों के हितों की एक्यता और स्वराज्य की मांग उपस्थित करने के लिये भारतीय राष्ट्रीय महासभा में मिल गई। मोपलाओं के उठते हुए भाव अभी भविष्य के पर्दे में छिपे रहे पर मुसलमानों के प्रथकत्व की प्रकृति से सारे भारतवर्ष में खलबली पड़ गई थी। जब सन् १९१७ में भारत-मंत्री श्री मॉंटेग्यु देहली में भिन्न२ भारतवासियों का शासन सुधार के सम्बन्ध में मत एकत्रित करने को बैठे तब मुस्लिम संस्थाओं के बाद संस्थाओं ने मुस्लिम लीग का विरोध किया।

युक्तप्रान्तीय मुस्लिम सभा ने कहा कि स्वराज्य के कोई भी बड़ा कार्य जिससे कि अंगरेज सरकार का प्रभुत्व कम हो हमारे लिये घातक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। बंगाल मुस्लिम सभा ने कहा "वर्तमान पिछड़ी हुई दशा में अधिकांश हिन्दू और मुसलमान जाति पांत, मत और विरोधी हितों में आपस में बंटे हुए हैं। उनकी भिन्नताएँ प्रति दिन के व्यवहार और सम्बन्ध से मालूम हो सकती हैं······ इन भाई भाइयों की मनुष्यता जो कि उन्होंने कांग्रेस को प्राप्त करी

अब भी बहुत से स्थानों में मुसलमानों को दबाने और उनके हितों के प्रति लापरवाही प्रगट हो रही है········ अब तक अंगरेज शासन बिना किसी पक्षपात के भारतीय सम्राज्य का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

दक्षिण इस्लामिया लीग ने कहा "अंगरेज सरकार के मूल-सिद्धान्त को जो कि भिन्न २ लोगों को एक ही दृष्टि से देखती है समझते हुए हम किसी भी कार्यक्रम का जिससे ब्रिटिश सरकार दफन हो जाय विरोध करते हैं और शनैः २ राजनीतिक उन्नति के पक्षपाती है।" बम्बई प्रान्त के मुसलमानों ने कहा "यह मुतालबा किया जाता है कि अंगरेजों की एकतन्त्रता भविष्य में नष्ट हो जायगी और कौंसिलों में भारतवासियों का बहु मत रहेगा। अंगरेजी सरकार में और चाहे जो कुछ भी खराबियां रही हों पर इसमें सन्देह नहीं कि उसने भारतवर्ष की दो बड़ी तराजुओं के पलड़ों को एक समान रक्खा है और इस प्रकार निर्बल की सबल से रक्षा की है।"

मद्रास के उलेमा ने फतवा दिया "बहुदेवता वादी नापाक है और इस दशा में यदि हिन्दुओं की इच्छानुसार अंगरेज़ सरकार उन्हें शासन सोपदे तो उन बहुदेवतावादियों के शासन में रहना मजहबी आज्ञा के विरुद्ध है।"

हिन्दू और मुसलमानों की संख्या भारत के अधिकांश प्रान्तों में प्रतिशत इस प्रकार है:—

प्रान्त	हिन्दू	मुसलमान
मद्रास	८८·६४	७·७१
बम्बई	७६·५८	१६·७४
बंगाल	४३·२७	५३·६६
युक्तप्रान्त	८५·६६	१४·२८
बिहार उड़ीसा	८२·८४	१०·८५
मध्य प्रान्त और बरार	८३·५४	४·०५
आसाम	५४·३५	२८·६६
पंजाब	३१·८०	५५·३३
उत्तर-पश्चमीय सीमा प्रान्त	६·६६	६१·६२

इस दृष्टि को लेते हुए कि इस्लामी-विश्वास के कारण मुसलमानों में सैनिक भाव अधिक जागृत हो गये हैं यह मालुम होता है कि ब्रिटिश भारत के उस हिस्से में जहां मुस्लमान बहुत कम हैं वहां भी झगड़ा उठाने के लिये वे पर्याप्त सबल हैं। राष्ट्रिय के स्थान में अधिक अन्तराष्ट्रिय मुसलमान सारे भारतवर्ष में आज कह रहे हैं "हम विदेशी हैं, विजेता हैं, लड़ने वाले हैं, अगर संख्या कम है तो इससे क्या ? क्या स्त्री, बच्चे और पुरुषों की संख्या ही गिनी जाती है ? जब अँगरेज चले जायगे तब हम शासन करेंगे। इसलिये हमको जितना भी हो सके आगे बढ़ना चाहिये।"

हिन्दू भी अपनी स्थिति को मजबूत करने के कोई अव-सर को नहीं चूकते और जब कभी कोई बात भारतवासी के हाथ में होती है तब यह चेष्टा की जाती है कि हर एक जगह

पर नियुक्ति, धन का व्यय और प्रत्येक निर्णय उसके धार्मिक दृष्टि से किया जाय। इस स्थिति ने सभी कामों में रोड़ा अटका रक्खा है और न्याय विभाग में तो इसका प्रभाव भयानक है। धार्मिक झगड़ों में कानून की शरण लेने के लिये भारतवासी इच्छुक रहते हैं परन्तु यदि अभियोग भारतीय न्यायाधीश के पास आता है तो एक या दूसरा निराश हो जाता है। क्योंकि वह न्याय में अपने ही धर्म वालों की ओर झुकेगा और दूसरे वादी को इस बात के लिये बाध्य करेगा कि वह ऐसा न करे।

भारत के कुछ न्यायालयों में कुछ देशी निष्पक्ष न्यायाधीश थे और हैं पर भारतवासियों को परम्परा से ऐसे ही जजों से पाला पड़ता है जो दोनों तरफ से रिश्वत ले लेते हैं और एक पक्ष के हारने पर उसकी फीस लौटा देते हैं। किराये के गवाह साधारण बात है और जिन्हें आप किराये के लिये न्यायालय की इमारत के बाहर घूमते हुए देख सकते हैं।

सन् १९२६ में मुस्लिम लीग के सभापति सर अब्दुल-रहीम ने कहा "एक भारतीय मुसलमान जब अफगानिस्तान, परसिया, मध्य एशिया, चीनी मुसलमान, अरब, तुर्क में कहीं भी जाता है अपने घर का सा अनुभव करता है और उसे कोई भी ऐसी चीज नहीं मिलती जिसका वह आदी न हो। उसके विरुद्ध भारतवर्ष के सामाजिक विषयों में बिलकुल विदेशी है।

हम मुसलमान जिनका १२०० वर्ष का इतिहास योरुप, एशिया और अफ़रीका में निरन्तर युद्धों से ही भरा है। उन

मनुष्यों को अत्यन्त मूर्ख या पागल समझते हैं; जिनका विचार यह है कि जब कभी एक दो बल्ब फेंक देने से या पीछे से एक दो अंगरेजों को गोली से मार देने से अथवा गांवों के निर्दोष लोगों को लूटने और मारने से वे अंगरेजों के शासन को उखाड़ फेंकेंगे। हम मुसलमान इन उन्माद रोग से पीड़ित लड़के और आदमियों को गम्भीर राजनीतिज्ञ नहीं मानते और यही कारण है कि एक भी मुसलमान उनके साथ नहीं हुआ है।"

इस बीच में सन् १८२६ में कलकत्ते में पहलीबार झगड़ा हुआ और कुछ ही महीनों में ३१ बार भयानक झगड़े हुए जिनमें से कई में बहुत आदमी मारे गये। अब हिन्दू और मुसलमान दोनों समझने लगे कि पारस्परिक सन्देह ने उन्हें कहाँ ला पटका है। पुराना गान्धीयत दोषारोपण कि इन झगड़ों में अंगरेजों का गुप्त हाथ कार्य कर रहा है गैर-जिम्मेदार और उत्तेजक लोगों के मुंह पर सुनाई देने लगा परन्तु दोनों पक्ष के बुद्धिमान लोगों ने यह समझना प्रारम्भ किया कि एक शक्तिशाली और निष्पक्ष संरक्षता की कितनी आवश्यकता है और अंगरेजों के जाते ही रक्तपात प्रारम्भ हो जायगा।



सत्ताईसवां प्रकरण



तीर्थ स्थान

ऐडविन अरनोर्ड ने काशी का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है और अनेक भ्रमणकारियों ने उसको प्रशंसा में अपना एक कोष का कोष खत्म करडाला है पर मैं एक चुँगी के हैल्थ अफसर के साथ गई थी जिसकी दृष्टि कोण ही भिन्न थी। इस स्थान पर नगर की समस्त समस्यायों पर विचार न करके कुछ थोड़ी सी बातों पर ही विचार करना उपयुक्त होगा।

काशी की स्थायी जन संख्या प्रायः २००,००० है जिसमें से करीब ३०,००० मन्दिरों से सम्बन्ध रखने वाले ब्राह्मण हैं। इस के अतिरिक्त २००,००० से ३००,००० मनुष्य प्रति वर्ष यात्रा को आते हैं और कभी २ विशेष अवसरों जैसे ग्रहण पर ४००,००० मनुष्य तक नगर में उस दिन के लिये भर जाते हैं और फिर कुछ दिन बाद वे एक दम उसी तरह चले जाते हैं जिस तरह वे आये थे। इन सब मनुष्यों की देख भाल करने के लिये चुङ्गी से हैल्थ अफसर को प्रायः २६०००) रु० प्रति वर्ष मिलता है जिसमें टीका, पैदाइश और मृत्यु का लेखा और अछूत और महामारी को रोकना आदि सब काम करने पड़ते हैं। उसका एक बडा काम यही होता है कि वह रेल से उतरे हुए यात्रियों में हैजे से पीड़ित मनुष्यों को नगर के बिलों में छि

जाने से पहले पकड़ ले। एक दफे हैजे से पीड़ित किसी मनुष्यों को निकल जाने दीजिए और उसका पता आपको हैजे की बीमारी भड़क उठने से पहले नहीं मिलेगा। चुंगी स्वास्थ्य विभाग के उच्च कर्मचारियों को तो एक अच्छा वेतन देती है पर छोटे कर्मचारियों को इतना कम देती है कि जब कोई छूत की बीमारी फैल जाय और सफाई (Disinfection) की आज्ञा हो तो वह इस प्रकोप से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं।

काशी पुराना नगर है। उसकी कुछ नालियां सोलह और सत्रहवीं शताब्दियों में बनी थीं और जिधर भी जाओ वे नदी में ही मिलती हुई दिखलाई पड़ती हैं। कितनी ही जगह यह नालियां पाट ली जाती हैं और कुछ स्थानों पर कूड़ा कर्कट अड़ जाने के कारण रुक के जाती हैं पर फिर भी बहुत सी नालियों में से गाढ़ी कीचड़ बह कर मनुष्यों की दृष्टि में ही कहीं नदी में गिरती रहती हैं पर कुछ रुकी नालियां बरसात की राह देखती रहती हैं जब कि पानी की शक्ति से उसकी कीचड़ बाहर निकल कर फैल जाती है।

नगर एक टीले पर बसा है, उसकी गलियां नदी की सतह से पचहत्तर फीट ऊंची हैं। टीले का मुख नदी की ओर तीन मील या उससे अधिक सीढ़ियों और दीवारों से घिरा हुआ है जो इस गन्दे पानी को रोकती हैं पर प्रायः यह पानी फूट निकलता है और प्रसिद्ध मन्दिर के सामने ही नदी में गिरने लगता है। यहां आचमन और स्नान करने वाले उस गं

यात्रियों, तिलक छापे वाले पवित्र मनुष्यों और भस्म रमाए योगियों और साधुओं में आप नाली के पानी को टेढ़ी मेढी और लम्बी दरारों में से टपकते हुए देख सकते हैं।

सन् १६०५ में अंगरेज़ घोर धार्मिक विरोध के पश्चात नगर में नल और कुछ भाग में अन्दरूनी नालियों (Sewage System) के बनाने में सफल हुए। नगर के दक्षिण भाग में मुख्य व टर-वर्क्स है जहां पानी एक तालाब में इकट्ठा करके छाना जाता है और फिर वहां से नलों में आता है, हैल्थ अफ़-सर स्वयम् एक सप्ताह में एक वार इस छने हुए जल की रसायनिक और कीटाणु सम्बन्धी परीक्षा करते हैं पर भगत लोग इसका छना हुआ पानी नहीं पीते। इसके स्थान में प्रति दिन नदी पर बैठ कर स्नान करने के घाट पर नहाने वालों के बीच में से जहां दीवार की दरार में से गन्दा पानी टपक कर मिल रहा होता है, घड़ा भर लाते हैं और अपनी प्यास बुझाते हैं। हैल्थ अफसर की तमाम चेतावनियां और चीख पुकार घृणा की दृष्टि से देखी जाती हैं। गंगा को अपवित्र करना मनुष्य शक्ति से बाहर है" और "गंगा के जल को छानने से उसकी पवित्रता नष्ट हो जाती है" वे विश्वास पूर्वक उत्तर देते हैं।

काशी में जो गंगा में स्नान और उसके जलका आचमन करता है और साथही पंडोंकी आवश्यताओं को भी पूरी करता है वह मनुष्य शरीर में होने वाले किसी भी रोग से मुक्त हो सकता है। इसलिए करोड़ों हिन्दुओं के रोग काशी में लाकर

पहुंच लिए जाते हैं। फिर जो कोई काशी में मरता है वह वैकुण्ठ को जाता है। इसलिए आजन्म रोगी लाभ से निराश होकर यहां यदि सम्भव हो तो नदी के किनारे प्रवाह में पैर डाल कर मरने के लिए आ जाते हैं।

इस विश्वास के सम्बन्ध में अनेक प्रसंग बड़े सुन्दर और उत्साह पूर्ण हैं पर सार्वजनिक स्वास्थ्य को जो भय है उस पर अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं। उनमें से एक मुर्दघटों की भीड़ भाड़ है। मुख्य श्मशान नदी के तट पर बस्ती में है, मेरे पथ प्रदर्शक ने कहा "संसार में कोई भी शक्ति इन्हें यहां से नहीं हटा सकती क्योंकि यह स्थान अत्यन्त पवित्रता का है। मैं जो कुछ कर सकता हूं वह केवल यही है कि मैं देखूं कि लाशें पूर्णतया जला दी जांय" लेकिन पूरी तरह जलाने में बहुत लकड़ियाँ लग जाती हैं और प्रत्येक उत्तराधिकारी इतना व्यय नहीं करना चाहता या कर सकता और म्युनिसिपैलिटी द्वारा प्रबंध की हुई चुंगियां इस मामले में इससे अधिक दिलचस्पी नहीं लेतीं कि दाह-कर्म को पूरा करने के लिये कुछ और लकड़ियां दे दी जांय।

जल के किनारे कहीं भी पाखाने नहीं हैं, लोग किनारे पर स्नान करने की सीढ़ियों में बालुकामयी भूमि का उपयोग करते हैं। इस तरह पर टाईफाइड का रोग का रोगी २०००० मनुष्यों तक में रोग फैला देता है। नदी के तट मुख्य नालियों के समान हैं और नदी का जल नालियों के पानी के समान गंदला

है। लाखों मनुष्य नदी में स्नान करते और आचमन करते हैं और सीढ़ियों पर सुखाने के लिये कपड़े बिछा देते हैं। इस तरह वे यथा सम्भव कीटाणु लेकर दूर २ भारतवर्ष में अपने घर चले जाते हैं और रोगों का विस्तार करते हैं।

सुन्दर और चित्रमय मन्दिर भी अपना कार्य करते हैं जिन के विषय में एक रोग निदान के विशेषज्ञ ब्राह्मण ने जिन्होंने योरप में शिक्षा प्राप्त की थी कहा "काशी के मन्दिर उतने ही हानिकर हैं जितना कि नदी के बांध का टपकना। मैं स्वयम् उस स्थान तक गया जहां कि पवित्रता के कारण जूते उतारने पड़ते हैं। सामने कीचड़ के ऊपर मन्दिर, सड़ा हुआ भोजन और कूड़ा कर्कट! मैं उसके भीतर नहीं घुसा। मैंने कहा 'नहीं' पर लाखों लोग जूते उतारकर भीतर जाते हैं और उपासना करके लौट आते हैं और बिना पैर धोए ही जूते पहिन लेते हैं। और मुझे एक हिन्दू डाक्टर को! यह देखना पड़ता है"।

भारतवर्ष में और भी अनेक तीर्थ स्थान हैं और प्रत्येक रोगों के केन्द्र का कार्य करता है और जिसमें से प्रत्येक के सुधार के लिए बड़ी जागृति और कार्यक्षमता की आवश्यकता है पर दूसरे साधारण भारतीय नगरों की स्वास्थ्य सम्बन्धी कठिनाइयां भी बहुत अधिक हैं। लाहौर ही को लीजिए, उसका योरोपीय भाग पाश्चात्य अमरीका की तरह हवादार, नया, कमरोंदार और वर्तमान ढंग का है और वहां कुछ सर गंगाराम के प्रयत्न से बनी हुई वर्तमान ढंग की सुन्दर इमारतें हैं ...

लाहौर का पुराना भाग जहां कि अधिकतर लोग रहते हैं और घूमते हैं और विशेषकर बाजार जहां कि भीड़ मिलती जुलती है भय का स्थान है जो स्वास्थ्य के डाईरेक्टर को रात में भी नींद नहीं आने देती।

गलियां प्रायः आठ फीट लम्बी, मेह के बाद कीचड़-कांदा जहां से ऊपर रहने के कई २ मंजिल ऊंचे मकान उठे हुये हैं। उनकी तह में दोनों तरफ छोटे दरवाजों की दुकानों की कतारें हैं जिनमें रुई, पीतल का सामान, पवित्र चित्र, बेल बूटों का सामान, रेशम, अनाज के ढेर, जवाहरात जमीन पर या दीवार पर दृष्टि-गोचर होते हैं। बहुतसी दुकानों के आगे लकड़ी के तख्त गली को रोक कर पड़े हैं। इन तख्तों के समीप ही दोनों ओर नालियां बहती हैं। नाली पाखाने की तरह सार्वजनिक व्यवहार के लिये खुली हैं। नालियों के पास ही तख्तों पर भुनी मछलियां, चाँवल की चपातियां, कढ़ी, चिपचिपी मिठाइयाँ और दूसरे खाद्य पदार्थों का बेचने के लिये ढेर लगा हुआ है। सब खाद्य सामग्री पैरों के समीप ही रक्खी है और मक्खियां, गंदे हाथ, गाय, बैल, कुत्ते या भेड़ और चूहे मुंह डाल कर अपना कार्य करते रहते हैं और भीख मांगने वाले और चर्म रोग से पीड़ित बच्चे उनके बीच में लोटते हैं जहां कि धूंआँ और धूल भरी रहती है। तुम्हें सावधानी से चलना पड़ेगा कि कहीं तुम किसी मकान की दीवार से न छू जाओ क्योंकि ऊपर मंजिल के पाखानों या नालियों का पानी टूटे हुए नलों या मोरियों से नीचे की गली में गिरता रहता है।

श्रीयुत गांधी जी के कई विचारों मे इङ्गलैंड रह चुकने के कारण बड़ा प्रभाव पडा है। वे कहतेहै "कुछ हमारी (भारतीय) आदतें ऐसी वुरी हैं कि लिम्वा नहीं जा सकता और उन पर मान सिक प्रयत्न को विफल कर देने वाला रंगचढ़ा हुआ है। मैं जहां कहीं भी जाता हूं यह गन्दगी सर्वत्र मिलती है। पजाव और सिंध में स्वास्थ्य के प्रारम्भिक सिद्धान्तों के विरुद्ध हम अपनी दीवारें और छत्तें गन्दी कर देते हैं जहां आंखों का रोग पैदा करने वाले कीटाणु और मक्खियों का उपनिवेश स्थापित हो जाता है। दक्षिण में हम गलियों को गन्दा रखने में नहीं चूकते और प्रातःकाल किसी भी मनुष्य के लिये, जिसमें सफाई का भाव है, शौच करते हुए लोगों की कतारों में जाना असम्भव है। वंगाल में उसी तलाव में जहाँ कि ढोर पानी पीते हैं, जहां लोग अपना शरीर का मैल धोते हैं, बर्तन धोते हैं, वही पानी पीने के काम में आता है।"

मद्रास में नलों की वर्त्तमान प्रणाली सन् १९१४ में वनकर चुकी जिसमें १०,०००,०००गेलन पानी प्रतिदिन साफ हो सकता है पर आबादी वढ़ने से ४,०००,००० गेलन पानी की कमी पड़ी। अंगरेज विशेषज्ञों ने नये फिल्टरों के प्रबन्ध की व्यवस्था चुंगी के सामने रक्खी परन्तु इन ६० नेताओं और सर्वसाधारण के संरक्षकों ने एक औरही नई व्यवस्था निश्चय की और वे अब १०,०००,००० गेलन प्रति दिन छानते हैं और उस में ४००,०००० लाख गेलन बिना छना हुआ पानी मिला कर नलों में पहुंचा देते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिये कि अंगरेज़ी पढ़ने से विचार और आदतों में उन्नति करने में अधिक समय लगता है। एक अच्छे कपड़े पहिने हुए मनुष्य जो बहुत अच्छी अंगरेज़ी बोल सकता है, एक गांव का हो सकता है जहां कि अगर उन्हें एक नये कूए की जरूरत हो तो वे आज वही करते हैं जो उन के पूर्वजों ने हजार वर्ष पहिले किया था। वे स्थान जमीन के ढलाव से नहीं चुनते बल्कि एक बकरे पर पानी का एक घड़ा डालते हैं, बकरा दौड़ता है, लोग उसके पीछे जाते हैं और जहां कि बकरा पहिले ठहरता है और जहां वह अपने बदन को हिलाता है चाहे वह गली के बीच में ही क्यों न हो, वहीं एक कूआ बन जाता है।



अट्ठाईसवां प्रकरण



संसार को भय

ब्रिटिश भारत में दस लाख मट्टी के बने हुये गांव हैं। अधिकांश गांवोंके लिये एकही स्थानसे मट्टीलीगईहै जिससेएकभयानक गड्ढा हो गया है और उसी गड्ढे के किनारे अपने मकान बना लिये हैं। पहली बरसात ही में वह गड्ढा पानी से भर कर गांव का तालाब बन गया और तब से सदैव गांव अपने इस तालाब में न्हाता आया है, उसमें कपड़े धोता आया है, वर्तन भांड़े उसमे साफ करता आया है, उसने उसमें अपनी मवेशियों को पानी पिलाया है, उसके किनारे पर शौच से निवृत होता रहा है और उसके जल से अपनी प्यास बुझाता आया है। गंदला होने के कारण जल में कीटाणु पड़ते जाते हैं और ज्यों २ पानी उड़ता जाता है वह गाढ़ा होता जाता है। कभी २ उसमें फूल उग आते हैं। गांव में नई बीमारियों के फैलाने का यह एक साधन है और मलेरिया ज्वर निष्पक्षता से सब के ऊपर कृपा करता है।

गांव में एक तालाब बना देना सबसे प्रसिद्ध और महान् दान है और एक अंगरेज हेल्थ-अफसर को सब से बड़ी म-

हत्याकांक्षा में से एक यह है कि सब तालाबों को पटवा डाले। किसी को भी मलेरिया ज्वर से मरने वाले मनुष्यों की संख्या ठीक २ ज्ञात नहीं है क्योंकि गांव का मुंशी जिसे सांप ने काटा हो, प्लेग या हैजा की महामारी नहीं हुई हो या जिसका लड़ाई में सरन फूट गयाहो जो स्पष्ट ही जानाजा सकता है बाकी सब को वह 'ज्वर' से पीड़ित हो कर मरना लिख देता है पर फिर भी दस लाख आदमी तो मलेरिया से मर ही जाते हैं। मलेरिया ज्वर देश पर एक बड़ा और खर्चीला प्रकोप है। न केवल इसलिये कि उससे मृत्यु संख्या बहुत अधिक है वरन् उससे भी अधिक यह कि वह देश की शारीरिक और सामाजिक अवनति का यह एक कारण है और जिससे और भी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

मलेरिया को रोकने का कार्य अन्य सफाई के कार्यों की तरह भारतवासियों के हाथ में आ जाने के कारण धीमा पड़ गया है पर जहां तहां कुछ स्वयंसेवक इस कार्य के लिये उठ रहे हैं जिसे देख कर प्रसन्नता होती है और इनमें से बंगाल की मलेरिया सहयोग समिति भी एक है जो मलेरिया को काबू में लाने की चेष्टा कर रही है।

गांव में ने इस बेश-कीमती तालाब के अतिरिक्त वहाँ एक कुंआ भी होता है। कुये की गहराई बीस से चालीस फीट तक होती है और उसमें ज़मीन की सतह का चूआ हुआ पानी भरा रहता है। धूप में पकी हुई ईंटों का एक घेरा इस

के चारों ओर बना होता है और उस पर लकड़ी का एक लट्ठा डला रहता है और उस पर पालती मारे हुए गांव वाले को कपड़े धोते हुए, नहाते हुए, दांत साफ करते हुए और कुल्ला करते हुए दीख पड़ते हैं और पानी पैरों से टकरा कर फिर वहीं गिर जाता है जहां से खींचा गया था।

फिर हर एक अपना २ घड़ा, जो कि एक डाक्टर की दृष्टि से बड़ा गन्दा और भयानक बर्तन होता है, लाते हैं और अपनी सब काम में आने वाली रस्सी से उसको नीचे डालता है और जब वह घर को लौटता है तो वह घड़े को कन्धे पर रख कर कुटुम्ब के लिए पानी पीने को ले आता है। अंगरेज़ों ने गांवों में अच्छे कूए बनवाने और उनका उचित व्यवहार करना सिखलाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया है पर फिलिपाइनीज की तरह यहां के लोग भी पुरानी लकीर के फकीर होने वाले हैं और वे पुराने अरक्षित कूओं को ही अधिक पसन्द करते हैं जहां वे अज्ञान से एक दूसरे को विषाक्त करते रहते हैं। कहीं २ पम्प लगे हैं पर वे नाम मात्र के लिए हैं। भारतवर्ष के लिए इन पम्पों का प्रचार सम्भव नहीं है क्योंकि मशीनरी का एक छोटा सा अंश भारतवासियों के लिए व्यवहार करने और देख भाल करने की चीज नहीं है। जब कि मशीन में से एक नट या वाशर गिर पड़ता है तो उसे कोई नहीं लगा सकता और उसमें जंग लगजाती है। इन कूओं का प्रभाव भारतवासियों तक ही परिमित नहीं है क्योंकि हैजा जल से ही उत्पन्न होता है

व्यवहार में नहीं लाते और वे किस स्थान को व्यवहार करते हैं इसका उन्हें कोई विशेष तात्पर्य नहीं रहता। एक नगर में हेल्थ अफसर की इच्छानुसार शौचगृह बन गये पर लोग उन्हें इस्तैमाल न करके पहली ही तरह सडक, नालियों और फर्शों को ही व्यवहार में लाते हैं।

इसका एक कारण यह भी है कि नगर में भंगियों की कमी है और पाखाना साफ करने के लिये कोई आदमी नहीं मिलता। एक ऊंची जाति का आदमी चाहे उसमें लोटता रहे पर उसे साफ नहीं करेगा और दूसरा कारण यह था कि इस अवसर के लिये हिन्दू प्रायश्चित अधिक सरल है। गाँव वाले हर हालत में अपने गांव के बिलकुल समीप की ही खुली ज़मीन जहां वे निरन्तर घूमते हैं इस कार्य के लिये व्यवहार में लाते हैं।

ऐसी स्थिति में कृमि रोग की चिकित्सा बहुत सादा और सस्ती होते हुए भी जब उन पर दुबारा आक्रमण होना अवश्यम्भावी है तो इस पर धन व्यय करना व्यर्थ है। यह हिसाब लगाया जाता है कि ८० प्रतिशत मद्रास के लोग और ६० प्रतिशत बंगाल के लोग कृमि रोग से ग्रसित हो जाते हैं। डाक्टर ऐन्ड्रयू बेलफोर इस सम्बन्ध में कहते हैं कि "प्रति वर्ष ४५,०००,००० मज़दूर और महनत पेशा लोग कृमि रोग के शिकार हो जाते हैं। सन् १८१५ में (Statistics Dept) ने हिसाब लगाया था कि बगाल

में प्रत्येक कृषक-मजदूर की मासिक आय औसतन दस रुपया है—यदि १०० रु० प्रतिवर्ष प्रति मनुष्य औसत मान ली जाय तो यह प्रसित ।४५,०००,००० मजदूर ४,५००,०००,००० रु० कमाते हैं। अब दार्जिलिंग के चाय बागान के मालिक हिसाब लगाते हैं कि अमरीका में राकफेलर एन्टी-हुकवार्म आन्दोलन के प्रयत्न से २५ से ५० प्रतिशत मजदूरों की कमाने की शक्ति बढ़ गई है पर यदि माना जाय कि भारतवर्ष में वह केवल १० प्रतिशत बढ़े तो तब भी ४,५००,०००,००० रु० बढ़कर ४,९५०,०००,००० रु० हो जाँय ।"

प्लेग भारतवर्ष में पहलीवार चीन से सन् १८९६ में आया और आज वह संसार में इस रोग का सबसे बड़ा अड्डा है और १८९६ से ११,०००,००० मनुष्य सिर्फ इसी रोग से मर चुके हैं। निमोनियां में जिसके साथ और भी रोग उठ खड़े होते हैं, शायद ही कोई बचता है। प्लेग यदि इस अड्डे पर काबू से बाहर निकल जाय तो किसी समय अन्तर्राष्ट्रीय आपत्ति खड़ी कर सकता है और अन्तर्राष्ट्रीय हेल्थ अफसर इसके लिये बड़े सतर्क हैं क्यों के अभी कुछ उन हिस्सों की तरफ भी यह प्रकोप बढ़ा है जिधर पहले कभी नहीं हुआ था।

हैजे की तरह प्लेग आदमी से आदमी को नहीं होता बल्कि बीमार चूहों के पिस्सुओं से होता है। पिस्सू आदमी को काटते हैं जिससे काटने के साथही विष शरीर पर रहजाता है और जैसे ही मनुष्य शरीर खुजाता है विष प्रवेश कर जाता

है। बहुत से देशों में आप चूहों को मारकर इस प्रकोप पर काबू कर सकते हैं पर आप हिन्दू देश में धार्मिक कारणों से ऐसा नहीं कर सकते।

हेल्थ अफसर के मार्ग में सब से अधिक बाधक लोगों का भाग्यवाद है। एक और बाधा अब उठ खड़ी हुई है कि राजनीतिक कार्यकर्त्ता एक गांव से दूसरे गांव में चुपचाप यह काना फूसी करते फिरते हैं कि सरकार हानि पहुंचाने पर तुली हुई है और यहां तक उन्हें भड़का दिया कि बहुत से पीड़ित स्थानों में जो अफसर काम करने गये उन्हें मार डाला गया।

मैं सन् १९२६ के शीतऋतु में एक अंगरेज डाक्टर के साथ महामारी से पीडित स्थानों में गई। गांव के लोग गांव छोड़ कर अस्थाई फूस की झोंपड़ियों में आ रहे। जब डाक्टर और मैं वहां पहुंचे तो वे भीड़ के भीड़ इकट्ठा हो गये और सलाह मांगने लगे।

"साहब, अगर हम यहां चूल्हे बनावें तो आंधी पतंगों को उड़ा कर हमारे इन फूस के झोंपड़ियों को भस्म कर देंगी। तब हम भोजन बनाने के लिये क्या प्रबन्ध करें?"

"मिट्टी के पुश्ते के पीछे चूल्हे बनाओ।"

"हां! साहब निश्चय ही ठीक है।"

"साहब, जब हम यहां अपने द्वार के बाहर बैठे हैं, यदि चोर हमारे घर में घुस कर माल असबाब ले जांय तब?"

"यदि ऐसा भी हो तो क्या तुम्हें प्लेग मार डाले इससे यह अच्छा नहीं है कि प्लेग से चोर मर जांय। तुम कुछ दूरी पर रखवाले भी रख सकते हो।"

"साहव बुद्धिमान है-आगे-उस तम्बू में एक निकम्मा अनजान आदमी है जो हमारे गले से दवा उतारना चाहता है। क्या यह दवा ठीक है ? क्या हम उसकी बात मानें ? और ठीक मूल्य क्या है।"

"उस तम्बू में जो आदमी है वह सरकार का आदमी है। जो जीवित रहना चाहते हैं उनके लिये वह दवा आवश्यक है। वह मुफ़् दी जाती है, कोई कीमत नही ली जाती।"

लोग कुछ देर चुपचाप रहे, और एक दूसरे की ओर देखते रहे, इसके वाद मुखिया बोला "यह वड़ा अच्छा है कि साहव आगये।"

हम जैसे ही आगे वढ़े डाक्टर ने कहा "ऐसा मालूम होता है कि वह दवा वनाने वाला आदमी टीका लगाने से पहले कुछ रुपया ऐंठता होगा। वे ऐसा करेंगे और यदि लोग इन्हें सन्तुष्ट नहीं करते तो वे रिपोर्ट करते हैं कि लोग टीका लगवाने से इन्कार करते हैं। सिपाही या पुलिस के आदमियों के अतिरिक्त हम किसी को टीका लगवाने के लिये मजबूर नही कर सकते।"

हम पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेन्ट के छोटे डाक्टर के पास गये जिसे छोटी २ चीरा फाड़ी, सादा रोगों के लिये सादा दवा देने

औरस्वास्थ्य के ऊपर मेजिक लेन्टर्न से व्याख्यान देने का कार्य सुपुर्द होता है। उसने शिकायत की "मैं लोगों को प्रति दिन बुलाता हूँ पर वे नहीं आते—वे कहते हैं प्लेग डाक्टर! चूंकि अब आप आगये हैं इसलिये प्लेग अवश्य आयगा और वे मुझपर हंसते हैं—वे पिछड़े हुए और जाहिल लोग हैं।"

अंगरेज डाक्टर उसकी चाजों की देखभाल करता है-उसके प्लेग वक्स के भीतर नलियां, सुइयां और सफाई करने का सामान ज्यों का त्यों रक्खा था। डाक्टर ने कहा"मुझे औजार देखने दो। सबजंग लगे हुए हैं और बहुत से टूट गये हैं। डाक्टर ने कहा जैसे ही तुमने उन्हें तोड़ दिया तुम्हें मेरे पास भेज देना चाहिये था ताकि दूसरे भेज दिये जाते। अब तुम्हारे पास काम करने के लिये कुछ नहीं है' हां! मैं भेजना चाहता था पर भूल गया।



उन्तीसवाँ प्रकरण

नीम हकीम

ब्राह्मणों की कहावत है कि "घूमने से बैठना अच्छा है, बैठने से लेटना अच्छा है, जगने से सोना अच्छा है और मृत्यु सबसे अच्छी है।"

गत अध्याय के विचारों के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि स्वयं भारतवासियों पर उनकी इन विचित्र गन्दी आदतों का क्या प्रभाव पड़ता है। रोगों ने उन्हें खोखला बना दिया है और जब कभी कोई रोग फैलता है तो वे उसका सामना नहीं कर सकते और मक्खियों की तरह मरने लगते हैं। इस स्थिति के अतिरिक्त बाल विवाह, समागम सम्बन्धी लापरवाही और मूत्र सम्बन्धी रोग शारीरिक और मानसिक अवनति की पराकाष्ठा कर रहे हैं। फिर इस प्रकार रहने वाले लोगों का अस्तित्व अब तक कैसे कायम है?

इसका उत्तर एक प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य-वेत्ता देते हैं "यह आदत की बात है और जिस स्थिति में वे रह रहे हैं वह अस्तित्व की नीचतम श्रेणी का है। अंगरेजों को उन्हें पीड़ित करने का दोष दिया जाता है पर नि-

अंगरेजों ने उनकी रक्षा न की होती तो उत्तर की बहादुर जातियां उन्हें मिटा देतीं।"

उत्तर की जातियां सिक्ख और विशेषकर पठान और दूसरे मुसलमानी गोरखा वीर हैं जो दूध, नाज और मांस खूब खाते हैं पर दक्षिण के लोगों के भोजन में मांस बढ़ाने के बहुत ही कम तत्व है। वे अधिकतर मिठाई और मसालों पर ही निर्भर रहते हैं और जहां तक सम्भव है वह आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। प्रायः सार्वजनिक कार्यकर्ता का अन्त बहुमूत्र रोग से ही होता है?

"कौनसा रोग भारतवर्ष का नाशक है' नामक पत्र में सरकारी खोजबीन विभाग के डाइरेक्टर लेफ्टीनेन्ट-कर्नल क्रिस्टोफर कहते हैं "भारतवर्ष में मृत्यु संख्या प्रतिवर्ष ७,०००,००० है जो कि लन्दन की आबादी से अधिक है" कर्नल क्रिस्टोफर आगे कहते हैं कि मृत्यु संख्या की इतनी अधिकता निरन्तर बीमारी, पैदावार की कमी, शासन के व्यय की अधिकता और व्यापार नष्ट होने का द्योतक है जिससे देश के साधनों की जो हानि हो रही है उसका हिसाब लगाना कठिन है. यह अनन्त चैन के लिये एक भारी दान के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकते।

इस कार्य के मापतोल के लिये साधनों की सदैव कमी रहती है—सन् १८९७-९८ के कुछ प्रान्तिक बजट में यह मद थे—

	शिक्षा	स्वास्थ्य
बम्बई प्रान्त	१४,५०,००० पौंएड	२००,६४० पौण्ड
मदरास प्रान्त	१२,६४,००० ,,	२१६,७०० ,,
युक्तप्रान्त	११६७,२०० ,,	१०२,८५० ,,
बंगाल	६००,४०० ,,	१८३,३५० ,,

इस विषय में भारतीय राष्ट्रीयता यही है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा का प्रसार हो जिसके द्वारा ही आजकल अधिकाँश लोगों की चिकित्सा होती है और यह चिकित्सा प्रणाली प्राचीन युग में देवताओं द्वारा अवतीर्ण हुई थी। सुश्रुत संहिता कहती है "एक रोग के लाभालाभ का अनुमान जो मनुष्य बुलाने आया हो उसके कपड़े, भाषा और हाव भाव से अथवा आने के समय ग्रहों और चन्द्रमा की स्थिति, अथवा उस समय जिस ओर हवा चल रही हो, अथवा सड़क के सगुनों से, अथवा स्वयं चिकित्सक की भाषा और स्थिति से किया जा सकता है। दूत अगर रोगी की ही जाति का हो तो वो शुभ-चिन्ह है पर यदि गैर जाति का हो तो रोग का परिणाम बुरा होगा।

मैंने स्वयं दो रोगी देखे। प्रथम तो एक छोटा लड़का था जो अपने ही टूटे हुए हाथको पारसल की तरह साधे हुए एक आयुर्वेदिक वैद्य से निराश होकर अंगरेज डाक्टर के पास आया था। इस रोगी का इतिहास यह था कि हाथ की हड्डी टूट गई थी और घाव से हड्डी बाहर निकल रही थी। वैद्यजी ने पहले तो

का गोबर घाव पर लगाया और फिर हाल की तोड़ी हुई छाल की तखतियां बांध दी थी। गर्मी तेज पड़ रही थी इसलिये छाल सिकुड़ी और वह इतनी दब गई कि रक्त बहना बंद हो गया। अब वैद्य जी ने पाश्चात्य सुई की सहायता की सलाह दी।

दूसरा मामला उसी प्रान्त में सन् १९२२ में हुआ जब कि एक आयुर्वेदिक चिकित्सक ने अपने शास्त्र के अनुसार कमर में बढ़ी हुई गांठ पर नस्तर लगाया। अपने रोगी को नीचे दबाते हुये उस गांठ को खोल दिया। जैसे ही कि चाकू भीतर गया, रोगी उछल पड़ा और एक नस और इन्टरवेंट्रन कट गया। तब वह चिकित्सक शल्यविद्या (Anatomy) से अज्ञान होने के कारण उसे सरकारी अस्पताल में ले

प्राचीन प्रणाली के पक्ष में केवल यही बात कही जाती है कि वह लोगों के लिये सस्ती है, भारतीय मनुष्यों की प्रकृति और धर्म के अनुसार है। अन्तिम तो तर्क के बाहर का विषय है इसलिये उसे मैं छोड़ देती हूँ। आयुर्वेद शाला को चलाने में प्रायः वही व्यय होता है जो एक पाश्चात्य ढँग के अस्पताल के चलाने में होता है और काले या गोरे आदमियों पर दवाई का प्रभाव भिन्न पड़ते हुए नही सुना गया।

मॉन्टेग्यु चेम्सफोर्ड सुधारों से देशी चिकित्सा की बीमारी फिर से पैदा होने लगी है और प्रान्तीय मन्त्री यूनानी और वैदिक कालेज और चिकित्शालाएँ बनाने में सार्वजनिक धन बहा रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीय महासभा यह दावा करती है कि आयुर्वेदिक औषधियाँ उतनी ही वैज्ञानिक हैं जितनी पाश्चात्य औषधियां और सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं कि आयुर्वेदिक विज्ञान पाश्चात्य की किसी भी चीज़ से बढ़ा हुआ है और स्वराज्यवादी देशभक्ति के प्रवाह में उसे आगे धकेल रहे हैं। ऐसी स्थिति में औषधि और सार्वजनिक स्वास्थ्य के नाम पर पास हुआ धन का अपव्यय हो रहा हैं।



तीसवां प्रकरण



आर्थिक खुर्दबीन में से आत्म-तत्व विषयक दृश्य

हमें इस पर सहमत होना पड़ता है कि किसी भी मनुष्य का सुख अन्त में उसी की आर्थिक स्थिति पर ही आधार भूत होता है। पिछले पृष्ठों में भारतवर्ष की आर्थिक दशा के कुछ पहलू दिखाये गये हैं और अब मैं अपने कुछ अनुभव जो कि मैंने जीवित क्षेत्र में देखे हैं उनमें और सम्मिलित करने की चेष्टा करूँगी।

भारतवासी पहले कहे हुये अन्यायों के अतिरिक्त अपनी पीड़ित अवस्था का एक और मुख्य कारण बतलाते हैं वह देश का आर्थिक रक्त स्राव है। जिन विषयों को अब तक लिया जा चुका है उनके सामने यह बनावटी और कमज़ोर है। मुझे जैसा मालूम हुआ मैं पतन के कारणों का वर्णन इस पुस्तक में कर चुकी हूँ पर भारतीय राजनीतिज्ञों की सूची में इसको कोई स्थान नहीं है। वह इनके स्थान में रुई, चाय, सरकारी कर्ज़ पर ब्याज, नाज का निर्यात, फौज का खर्च और भारत में अंग्रेज़ सिविल सर्विस के नौकरों की तनख्वाह को गिना जाते हैं।

रुई की बाबत् उसका कथन है कि देश की कच्ची रुई इङ्गलैण्ड के लंकाशायर की मिलों के हित के लिये भेजी जाती है और कपड़े मे परिणित होकर भारतीय ग्राहकों के सर मढ़ी जाती है पर वास्तव में बात यह है कि भारत की रुई इंगलैण्ड को बहुत कम जाती है और लंकाशायरो की मिल के लिये तो रुई अमेरिका और सुडान से आती है। भारतवर्ष से तो जो रुई जाती है वह खराब और कमजोर होने के कारण लम्पों की बत्तियां, साफ करने के कपड़े और अन्य नीची श्रेणी के सूत बनाने के काम में आती है।

भारत की रुई के व्योपार पर दो बातों का प्रभाव पड़ा है उसे यहां कहना आवश्यक होगा एक सरकार के द्वारा भारतीय मिल के कपड़े पर कर लगाना जिसे कोई भी अंगरेज़ पसन्द नही करता और वह अब हटा दिया गया ह। दूसरे यह कि भारतीय लोगों के पास कुछ अधिक रुपया होता जाता है और इस लिये उनमें खर्च करने की प्रवृत्ति भी वढ़ती जाती है और वह अब भारतीय मिलो के मोटे कपड़ो के स्थान में अच्छा कपड़ा पहिनना पसन्द करते हैं। इसलिये जापान की प्रति-द्वन्दता के होते हुये भी और मि० गान्धी के चर्खे और मोटा कपड़ा पहिनने के आन्दोलन के वाद भी भारतवर्ष लंकाशायर के वढ़िया कपड़े की तरफ वढ़ता जाता है।

भारतीय राजनीतिज्ञों मे सवसे वड़े चढ़े सज्जन ने मुझ से कहा कि इंगलैण्ड हमारे देश की कच्ची रुई ले जाता है और

फिर उसका कपड़ा बना कर हमारे सर पर ही मढ़ता है। इस तरह से सब लाभ उसका है और भारतवर्ष लूटा जाता है।

लेकिन अमेरिका रुई पैदा करता है जिसमें से कुछ इंगलैण्ड खरीदता है और फिर कपड़ा बना कर अमेरिका को भेज देता है। हम सबसे अच्छे दाम देने वाले ग्राहक को बेचते हैं और जहाँ हमारी आवश्यकता की चीजें मिलती हैं खरीदते हैं" मैने पूछा "तुम्हारे और अमेरिका के बीच में क्या विभिन्नता है।"

"पर चाय का विचार करो" भारतीय अर्थ शास्त्री तुरन्त उत्तर देता है "हम चाय की बड़ी खेती करते हैं पर सब भारतवर्ष से चली जाती है और यह देश के लिये दूसरी हानि है।"

"क्या आप अपनी चाय बेचते हैं या यों ही दे देते हैं।"

'हां! पर आप सोच सकती हैं चाय तो चली जाती है।"

देश के हानि की तीसरी मद् है सरकारी बांड पर ब्याज जो कि विलायत को दिया जाता है और हम इस पर विचार एक रेलवे के विषय को लेकर ही कर सकते हैं।

भारतवर्ष में पहली रेलवे लाइन सन् १८५३ में खुली और सन् १९२८ के मार्च के अन्त तक ३८,०२९ मील रेलवे लाइन खुल गई और सन् १९२५ में उसमें संयुक्त राज्य, अमेरिका से साढ़े चार गुने मुसाफिरों ने सफर किया।

अमेरिका और भारतवासियों के भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से भारतीय अर्थ शास्त्री के [illegible] का जोर की

पता चलता है। जब अमेरिका ने अपनी पहली रेलें बनाईं तो उसके पास काफी धन नहीं था और उसे बहुत सा रुपया बाहर से विशेषकर इंगलैण्ड से लेना पड़ा और वह सन् १९१४ तक चुकाता रहा। भारतवर्ष में भी जब रेल बनी तब उसे भी अपने देश में रुपया न मिला और वह इस कारण से नहीं कि देश में रुपये की कमी थी यह इस कारण से कि भारतीय पूँजी-पति भारी व्याज पर ही रुपया देते थे। सरकार ने इस लिये विलायत से उधार लिया और उसके लिये अब २·५ से ५ प्रति शत तक व्याज देती है लेकिन व्याज वगैरः कुल खर्च को मदों के बाद रेलवे से सन् १९२४–२५ में १२, २३७, २०० पौंड लाभ हुआ।

श्रीयुत गान्धी और अन्य राजनीतिज्ञ उस प्रदेश से नाज भेजे जाने को जहां खाद्य पदार्थों की स्वयं कमी हो को देश के लिये घातक बताते हैं पर आज कोई भी आदमी अपने भोजन को नहीं बेचता जिसकी उसे स्वयं खाने के लिये आवश्यकता है और यदि वह बेचता है तो वह उस चीज़ के प्राप्त करने के लिये जिसे वह या तो अधिक आवश्यक अथवा अधिक वांछित समझता है। सरकार ने बहुत सी भूमि को जो पहले बोहड़ पड़ी हुई थी बड़ी उपजाऊ ज़मीन में परिणित कर दी है और भारतवासी अपने देश की आवश्यकता से अधिक नाज पैदा कर रहे हैं। रेल, सड़क और जहाज़ों ने संसार के खरीददारों को उनके दरवाजे पर लाकर खड़ा कर दिया है।

यदि सरकार निर्यात पर कर लगा देती तो हल्ला मचाया जाता कि उसकी स्वेच्छाचारिता देश को उपज का लाभ उठाने नहीं देती।

पांचवी बात फौज की है जिसके लिये ये कहते हैं कि फौज में आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा खर्च कर दिया जाता है। कुल व्यय का ५६ प्रति शत फौज पर खर्च होता है पर यदि प्रान्तीय आमदनी कोभी सँभाल लिया जायतो ३ प्रति शत ही होता है। अपने देश की रक्षाके लिये भारतवर्षको २ शि० ५ पैंस (करीब १ रुपया १० आना) प्रति मनुष्य प्रति वर्ष देना पड़ता है लेकिन ग्रेटब्रिटेन २ पौं० १४ शि०. अमेरिका १ पौं० १ शि० और जापान प्रायः भारतवर्ष से छः गुना खर्च करता है।

रुपया कम रह जायगा। अन्तिम उपाय यही है कि सरकार का लगान बढ़ाया जाय।

भारतवासियों का यह तर्क बड़ा कमज़ोर है कि फौजों से देश का धन बाहर चला जाता है पर बात यह है कि फौज की भारी तनख़ाह भारतवर्ष में ही रह जाती है। भारतीय सिपाही तो अपनी आय यहां व्यय करते ही हैं और जो तनखाह अंगरेजी सिपाहियों की विलायत जाती है वह इतनी कम है कि उस पर विचार करना ही व्यर्थ है। प्रायः सब ही अंगरेज़ फौजी अफसर अपने वेतन के अतिरिक्त अपनी निजी घर की आय को भी यहां खर्च कर रहे हैं। सामान के सम्बन्ध में जो भारतीय फर्में उचित मूल्य पर उचित चीज़ें देती हैं उनसे खरीद लिया जाता है नहीं तो एक हाई कमिश्नर की मार्फत जो कि स्वयं भारतीय है, विलायत में खरीदी जाती हैं।

एक और नुकसान देशके लिये इण्डियन सिविल सर्विस के अंगरेजी सदस्यों का वेतन है। आरम्भ में तो अच्छे आदमियों को लेने के लिये अच्छी तनखाहें दी जाती थीं पर गत पच्चीस वर्ष में चीजों के दरों के चढ़ जाने पर भी कोई उचित तरक्की वेतन में नहीं हुई है। यह गोरे लोगों का देश नहीं है और यदि यहां उनका प्राण नहीं निकलता तो उनका भी स्वास्थ्य अवश्य लुट जाता है।

इस तर्क का निर्णय कर-तालिका पर एक दृष्टि डालने से ही हो जाता है। सन् १९२३-२४ में ब्रिटिश भारत में प्रत्येक

मनुष्य को प्रतिवर्ष केवल साढ़े पांच रुपया देना पड़ा जब कि फिलीपाइन का सन् १९२३ में प्रति मनुष्य प्रति वर्ष प्रायः दस रुपये था। एक जमाने की सरकार का व्यय अधिक होने पर वह इतना कम कर दिया गया है जितना सम्भव हो सकता है लेकिन ऐसे विचारवान लोगों की भी कमी नहीं है जो यह विचार करते हैं कि करों की कमी जिसके कारण उन्नति के साधन करने के साधन नहीं रहते, देश की गरीबी का कारण है।

विवाह उसे नष्ट कर देते हैं क्योंकि अभिमान और रीतिरिवाजों के कारण उसे शक्ति से बाहर व्यय करना पड़ता है, विवाह और दाह-कर्म के व्यय, मुकदमे लड़ने का प्रेम, मितव्यिता की कमी और फसल का मारा जाना यही कारण भारतवासियों को कर्ज में डालते हैं जब भारतवर्ष का बनिया अपनी थोड़ीसी पूँजी को अपने पड़ोसी को ३२ प्रतिशत ब्याज पर देता है तो वह सरकार को ३.५ प्रतिशत पर क्यों देगा? यह तो लन्दन के मूर्ख लोगोंको करने दो। बनिया वह आदमी है जो नाज अपने घर मे भर लेगा और फसल की कमी होने पर उसे तिगने दामों में बेचेगा। एक बार बनिये के कर्ज मे आ जाने पर बहुत कम बचते हैं। कपड़ा, बैल और सब जरूरात की चीजें इसी से खरीदी जाती है जो कि सूद दर सूद से बढ़ता जाता है और तीसरी और चौथी पीढ़ी तक चुकाना पड़ता है।

सन् १९२७ में अमरीकन वाणिज्य कमिश्नर ने भारतवर्ष के खजाने की बाबत लिखा था कि पांच अरब डालर की सम्पत्ति निकम्मी पड़ी है जो यदि बाजार में उधार दी जाय अथवा कार्यक्षेत्र में लगाई जाय तो वह भारतवर्ष को महान राष्ट्रों मे से एक बनाने के लिये पर्याप्त है। हैदराबाद के स्वर्गीय निजाम ने बहुत कीमती जवाहरात इकट्ठे किये और वर्तमान निजाम जो सोने चांदी के प्रेमी हैं उन्होंने १५ से २० करोड़ डालर तक मूल्य का सोना चांदी इकट्ठा किया है। इसी तरह हर एक किसान तक भी चांदी जमीन

में गाड़कर रखता है या सुरक्षित रखने के लिये अपनी स्त्री पर लाद देता है। इस तरह संसार की ४० प्रति शत आय का सोना और ३० प्रति शत चांदी भारत में खप जाती है। बहुत सा सोना चांदी गाड़ कर भुला दिया गया है। एक आदमी के पास रुपये गड़े पड़े हैं पर फिर भी वह कर्ज लेता जाता है।

नाज की उपज के विषय में बात यह है कि उसने कभी जमीन को जरखेज़ बनाने की चेष्टा नहीं की। बराबर वह जमीन से लेता तो रहता है पर उसकी पूर्ति नहीं करता और फिर भी उपज की कमी पर रोता है। लकड़ी थोड़ी होने के कारण वह गोबर के उपले बना कर काम में ले आता है और हड्डियों को धार्मिक निषेध होने के कारण छू नहीं सकता और विदेशों को बेच देता है और वह छोटे से लकड़ी के हल से जमीन को जोतता है जिससे जमीन मुश्किल से खुरचती है। यदि वह दबे हुए धन या उसके ब्याज का उपयोग करे, उससे मशीन खरीदे तो कितना लाभ हो सकता है?

भारतवर्ष के धन के नाश का अन्तिम कारण भिक्षा वृत्ति है। ब्राह्मणोंके शास्त्र में जीवन के अन्तिम अर्ध-भाग में संसार को त्याग कर भिक्षावृति धारण करने का आदेश है और साथ ही यह भी वतलाया जाता है कि जो भिखारी को देता है वह वास्तव मे उस भिखारीका कर्जदार है और जो लेता है वह देने वाले का दूसरे जन्म में पानेका अधिकारी वनाता है। इसलिये भिक्षुकके लिये श्रम या कृतज्ञता मानने को जरूरत नहीं है। गत जनगणना को रिपोर्ट से पता लगता है कि भिखारियों और जोगियों की संख्या ५८ लाख है पर वास्तव में उनकी संख्या इससे भी अधिक है क्योंकि इसमें वह सन्त और फकीर भी सम्मलित होने चाहिये जो दूसरों पर निर्भर हैं। सरकारी हेसाब से ऐसे सन्तों और फकीरों की संख्या १,४५२,१७४ है।

यह लोग सैकड़ों के झुण्ड में घूमते फिरते हैं और जहां वे जाते हैं सर्व साधारण से उनका पेट भरता है। तम्बुओं में, सड़कों पर नंग धड़ंगे, धूल रमाए और नशे में आंख लाल किये हुए दिखलाई पड़ते हैं। एक सज्जन ने मुझसे कहा कि मद्रास के मेले पर ढाई मील तक दोनों तरफ इन भिख मंगों की लैन लग गई।

श्रीयुत गान्धी और उनके साथी कहते हैं कि अंगरेजी शासन के कारण देश दिन पर दिन निर्धन और दुखी होता जाता है पर वास्तव मे वात यह है कि देश के लोगों को अपनी

दशा सुधारने का विचार ही नहीं है । वे अपनी मट्टी की झोपड़ियों पर ही सन्तुष्ट हैं, वे अपने पुराने ढर्रे पर ही चलना चाहते हैं पर फिर भी वे अधिक सशङ्कित हो गये हैं और किसी भी आफत का सामना करने की उनमें अधिक शक्ति आ गई है । इस समय साधन उनके सामने हैं और वे अपनी दशा सुधार सकते हैं ।

